सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 56 ; अंक : 04
जुलाई 2023

प्रकाशन तिथि : 01.07.2023
मूल्य – एक प्रति: 22/–, वार्षिक : 230/–

अमृतकण

येषां त्रीण्यवदातानि विद्या योनिश्च कर्म च।
तान् सेवेत्तैः समास्या हि शास्त्रेभ्योऽपि गरीयसी।।

(वन. 1/26)

जिनके विद्या, कुल और कर्म—ये तीनों शुद्ध हों, उन साधु पुरुषों की सेवा में रहे। उनके साथ बैठना, उठना शास्त्रों के स्वाध्याय से भी श्रेष्ठ है।

❋ ❋ ❋

न विषादे मनः कार्यं विषादो दोषवत्तरः।
विषादो हन्ति पुरुषं बालं क्रुद्ध इवोरगः।।

(किष्किन्धा० 64/1)

मन को विषादग्रस्त नहीं बनाना चाहिये; विषाद में बहुत बड़ा दोष है। जैसे क्रोध में भरा हुआ साँप बालक को काट जाता है, वैसे ही विषाद पुरुष का नाश कर डालता है।

❋ ❋ ❋

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

(मुण्डक 2/2/8)

कार्य—कारणरूप परात्पर ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाने पर हृदय की अविद्यारूप ग्रन्थि टूट जाती है, समस्त संशय—संदेह कट जाते हैं और समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं।

❋ ❋ ❋

द्विषत परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः।
भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति।।

(श्रीमद्भागवत् 6/21/23)

जो अभिमानी और भेददर्शी है, जिसने सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति वैर बाँध रखा है, अतएव जो दूसरे के शरीर में स्थित मुझ अन्तर्यामी परमात्मा से द्वेष रखता है, उसके मन को कभी शान्ति नहीं मिलती।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 56 | जुलाई 2023 | अंक : 04

तं दुर्दशं गूढ़ मनु प्रविष्टं,
गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्म येगाधिगमेन देवं,
मत्वा धीरों हर्ष शोकौ जहाति।।

अर्थात्

अर्थात् जो योग माया के पर्दे में छिपा सर्वव्यापी, सब के हृदय रूप गुहा में स्थित संसार रूप गहन बन में रहने वाला सनातन है। ऐसे उस कठिनता से देखे जाने वाले परमात्म देव को शुद्धि बुद्धि युक्त धीर साधक अध्यात्म योग की प्राप्ति के द्वारा समझकर हर्ष और शोक को त्याग देता है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख- *योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज*	3
2.	सम्पादकीय	15
3.	श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा- *डॉ. विजय सिंह*	20
4.	गुरुदेव जी पोलिंग ऑफिसर बने- *श्री जगदीश राए बंसल*	24
5.	गुरु चरणों की रज से भवसागर पार- *श्री अन्तू राम यादव*	28
6.	नाम कीर्तन महिमा- *श्री कृष्ण कुमार पाण्डेय*	32
7.	विंनु श्रम नारि परम गति लहई- *श्रीमती सरिता भारद्वाज*	36

एक प्रति	: रु. 22.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 230.00
द्विवार्षिक	: रु. 400.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 1500.00

विशेष लेख

शक्ति प्राप्ति के दिव्य साधन

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने अपने पिछले लेखों में यह भली प्रकार से समझा दिया है कि शक्ति विहीन व्यक्ति कुछ भी नहीं है। हमारे शास्त्रों का कथन है–

''नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो''

अर्थात् बलहीन मनुष्य को आत्म पद की प्राप्ति स्वप्न में भी सम्भव नहीं है। जो प्राणी शक्तिहीन है वह लोक व परलोक के सुख को किसी प्रकार भी प्राप्त नहीं कर सकता। उसका जीवन केवल इस प्रकार का है जिस प्रकार से वर्षा काल में अनेक प्रकार के कीट–पतंगे आदि जन्म लेकर मर जाया करते हैं। मनुष्य जब से जन्म ग्रहण करता है तब से उसके मन में शक्ति प्राप्ति की धुनि सवार रहती है। किन्तु ''मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना'' के नियमानुसार साधन में प्रवृत्त मनुष्य अपनी मति के अनुसार होता है। इसलिए वह जिस प्रकार की साधना करता है उसी प्रकार की शक्ति का अनुभव कर अपने आपको आह्लादित कर लेता है किन्तु उसका वह आह्लाद बहुत थोड़े समय के लिये होता है जिस प्रकार से समुद्र की मछली को कहीं तपी हुई बालुका की गर्मी को पाकर तड़प जाया करती है और यदि उसको कोई छोटा–सा भी जलाशय मिल जाता है तो उसे पाकर उसको शान्ति मिलती है किन्तु वह शान्ति उसके लिए अस्थाई है जब तक वह मछली अपने घर समुद्र को प्राप्त नहीं हो जायेगी तब तक उसका दुःख तड़पना किसी भी प्रकार से कम नहीं हो सकता। इसी प्रकार यह जीवात्मा परमात्मा का सनातन अंश है और जब तक यह उन्हीं को प्राप्त नहीं हो जाता तब तक छोटी–मोटी शक्तियों को पाकर के इसको शांति किस प्रकार से उपलब्ध हो सकती है और जिसको शांति ही नहीं मिली उसको सुख कहाँ से आयेगा। इसलिये योगियों ने अपने तप के आधार पर उच्चतप शक्ति प्राप्त करने के उपायों का अन्वेषण किया जिनको करते हुए वह कभी भी दीनता को प्राप्त नहीं होगा। हमारे शरीर में सभी प्रकार की शक्तियों

की उत्पत्ति का केन्द्र मन है। मन को ज्योतियों की भी महाज्योति कहा गया है और वेद मंत्रों में उसको शिव संकल्प वाला होने की प्रार्थना की गई है।

अर्थात् हमारा मन ज्यों जागता हुआ दूर–दूर भ्रमण करता है और सोता हुआ भी इसी प्रकार क्रियाशील बना रहा करता है। उसमें शुभ संकल्पों का वास हो जिससे वह हमारे उत्थान का कारण बने, हमारे पूर्वजों का कथन है–

मनएव मनुष्यणाम्
कारणं बन्धमोक्षयो:।

अर्थात् बन्ध और मुक्ति का कारण मन है इसलिए सर्वप्रथम मन की बागडोर को रोक कर शक्ति संचय करने के लिए उसका संयम में ले आना बहुत ही आवश्यक है। भगवान् पतंजलि देव ने 'योग–दर्शन' में अष्टांग योग का वर्णन किया, जिनके सभी अंग यद्यपि मन पर संयम करने के लिये अचूक साधन हैं। किन्तु फिर भी सब प्रकार की साधना करते हुए अष्टांग योग के अन्दर धारणा, ध्यान और समाधि मनोनिग्रह करने के तीन प्रमुख साधनों का उल्लेख किया है। जब तक मन किसी धारणा के द्वारा अन्तर्मुख नहीं होता तब तक इसके अन्दर शक्तियों का उदय नहीं हो सकता। किसी महा वृक्ष को छेदन करने के लिए पहले इस प्रकार के शस्त्र की जरूरत है जो तेजधार वाले हों और उसे काट सकें इसलिये परम श्रेय लाभ करने के लिये और अपने अन्दर दिव्य शक्तियों को संग्रहीत करने के लिये प्रथम मन को ही बना लेना बहुत आवश्यक है। उसकी पहली साधना धारणा से आरम्भ होती है।

धारणा

धारणा का अभ्यासी मनुष्य बाह्य जगत में प्रवेश करने की योग्यता को धारण करता है। धारणा क्या है ? इसके विषय में भगवान् पतंजलि देव अपने सूत्र में निर्देश इस प्रकार करते हैं–

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

अर्थात् किसी लक्ष्य स्थान में चित्त को इकट्ठा करना धारणा कहलाती है। यह धारणा ही योग का सर्वप्रथम सोपान है। यहाँ से ही मनुष्य का सर्वार्थक मन एकाग्र होना आरम्भ होता है। धारणा कहाँ करनी चाहिए इस विषय में शास्त्रों के अनेक मत हैं किन्तु योग दर्शन पर भाष्य लिखते हुये धारणा स्थान निम्नांकित बतलाये हैं–

नाभिचक्रे, ह्रदय पुण्डरीके, मूर्ध्नि ज्योतिषि, नासिकाऽग्रे, जिह्वाऽग्रे, इत्येवमादिषु देशेषु बाह्ये वा विषये, चित्तस्य वृत्ति मात्रेण बन्ध इति धारणा।

अर्थात् नाभिचक्र, हृदय कमल, मूर्ध्व ज्योति, नासिका अग्र, जिह्वा अग्र इत्यादि स्थानों पर चित्त को वृत्ति मात्र से एकाग्र करना धारणा कहलाती है। वृत्ति मात्र कहने का अभिप्राय यह है कि इनको हम अपने मन की वृत्ति के कल्पनात्मक रूप से चिन्तन करें, जिस प्रकार से आँख रूप को प्रत्यक्ष देख लेती है और मन उस रूप की भावना किया करता है। देखे सुने हुए विषय को मन में भावना रूप में चिन्तन करना ही वृत्ति–वृन्द है। इसका अभिप्राय इस प्रकार समझ लेना चाहिए, जैसे हमने हृदय कमल में भगवान् शिव के स्वरूप पर धारणा करना आरम्भ की एवं कल्पना से उनके स्वरूप को हम हृदय में बैठा हुआ देखने लगे। यही हृदय कमल की धारणा है। बार–बार कल्पना से भगवान शिव, श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्री विष्णु या अन्य किसी भी इष्टदेव के स्वरूप का हृदय कमल में चिन्तन करना यह हृतपुण्डरीके में होने वाली धारणा है इसी प्रकार से मूर्ध्वा ज्योति, नासिका अग्र, जिह्वाग्र, नाभि चक्र आदि में धारणा की जाती है। धारणा करने वाले व्यक्ति को चाहिए वह फल की इच्छा को छोड़ करके कर्म को करता रहे। किसी भी काम में मनुष्य जल्दी परिणाम को प्राप्त नहीं कर सकता। भगवान् पतंजलिदेव का आदेश है–

स तु दीर्घ कालनैस्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमिः।

अर्थात किसी भी अभ्यास को हम करना शुरू करें तो उसके परिणाम की प्रतीक्षा के लिये उसका वर्षों तक लगातार करते रहना बहुत आवश्यक है। यह नहीं होना चाहिए कि हम एक–दो दिन करके ही उसके परिणाम की आकांक्षा करें। काफी लम्बे समय तक उस अभ्यास को करना चाहिए और लगातार करना चाहिए अर्थात् इस नियम में कोई विघ्न नही आये। आज कर लिया कल फिर छूट गया, फिर दो–चार रोज कर फिर कुछ समय के लिये छूट गया। इस प्रकार का अभ्यास सफलता के उच्चतम स्तर पर नहीं ले जा सकता। उसके साथ–साथ एक बात और परमावश्यक है कि हम श्री गुरुदेव के वचन पर विश्वास करके उस अभ्यास को करें जिससे हमारी श्रद्धा परिपूर्ण रूपेण हो, हमने किसी मन्त्र का जाप शुरु किया और उसमें हमारी आस्था न हुई तो उसका भी परिणाम जल्दी श्रेयस्कर नहीं हो सकता। वैसे शास्त्रीय नियम के अनुसार **'अकर्णात् कर्णम् श्रेयः'** न करने से कुछ करना ही अच्छा है, इस बात को विचार में रखते हुए जो कुछ भी किया जाये, कुछ–न–कुछ भले के लिये तो होता ही है किन्तु यदि हम उसके उत्तम और अन्तिम निष्कर्ष को देखना चाहते हैं तो उपरोक्त तीनों नियमों का पालन करना हमारे लिये बहुत ही आवश्यक है। इसलिये धारणा को भी परिपक्व करने के लिए हमें कम–से–कम तीन साल तक एक विषय पर ही परिपक्व मन लगाना चाहिए। तीन साल तक यदि मन्दाधिकारी भी उपरोक्त सूत्र के

अनुसार धारणा का अभ्यास करेगा तो उसका भी मनोबल अवश्य बढ़ेगा ही बढ़ेगा। धारणा के अभ्यास से मन में विचार करने की उच्च स्तर की योग्यता प्रगट हो जाती है और वह एकाग्रता की ओर चलने लगता है। भगवान् पतंजलि देव ने योग दर्शन में कहा—

धारणा सु योग्यता मनसः।

अर्थात् धारणा करने पर मन की योग्यता बढ़ती है। मन में बल का विकास होता है और वह सब कुछ करने की ताकत वाला बन जाता है। जो व्यक्ति दो या तीन साल तक लगातार प्रातः व सायंकाल 3–3 घण्टे अपने ध्येय विषय की धारणा करके उसको वृत्ति वृन्द से एकाग्रित करना चाहता है उसका ऐसा अनवरत अभ्यास करने पर अवश्य ही वह विषय उसके मन में प्रगट होने लगता है। मन को एकाग्र करने के कुछ इस प्रकार के नियम हैं कि जिनके पालन करने से हर मनुष्य का मन एकाग्र हो ही जाता है। यदि वह किसी अच्छे कण्ट्रोलर अर्थात् अच्छे नियंत्रक गुरुदेव की आज्ञा में बँधकर अपने अभ्यास को नियमानुसार करता है। इस प्रकार से लगातार किया हुआ यह धारणा अभ्यास स्वतः ही ध्यान के रूप में बदल जाया करता है।

ध्यान

भगवान् पतंजलि देव ने ध्यान की परिभाषा बतलाते हुये अपने योग दर्शन में यह सूत्र कहा है—

तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्।

अर्थात् उस ध्येय विषय में चित्त का सदृश्य प्रवाह अर्थात् लगातार लगे रहना किसी और विषय का चिन्तन बिल्कुल नहीं आना ही ध्यान कहलाता है। इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुये भगवान् व्यासदेव लिखते हैं—

तस्मिन देशे ध्येयालम्बनीभूत प्रत्ययस्यैकतानता
सदृश प्रवाहः प्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम्।

अर्थात् ध्येयालम्बनीभूत विषय का अनवरत चिन्तन, जिसमें दूसरे चिन्तन का स्थान भी न हो एवं वृत्ति तेलधारा के माफिक एक स्तर की चले, उसी का नाम ध्यान कहलाता है। ध्यान उस विषय का नाम है जिसमें चित्त के अन्दर एकाग्रता परिणाम का पूर्ण उदय हो जाता है। अभी तक हमारा चित्त सर्वार्थक था अर्थात् उसको इन्द्रियाँ अपने–अपने विषयों को दिखलाती थीं और उनमें ही बटाँ हुआ रहा करता था, कर्णेन्द्रियों ने किसी मधुर आवाज को ग्रहण किया तो चित्त चट उसकी ही ओर भाग गया। रसनेन्द्रिय जिन्होंने किसी प्रकार के रस का आस्वाद किया तो चित्त उसमें ही भटक गया। नेत्रेन्द्रियों ने किसी रूप को दिखाया, मन

रूपदर्शन से लग गया। त्वगेन्द्रिय ने स्पर्श ज्ञान की ओर मन को खींचा उस ही की ओर लग गया। घ्राणेन्द्रिय ने किसी प्रकार की सुगन्ध को ग्रहण किया तो मन उसको ही ग्रहण करने में लग गया, इस प्रकार से हमारा मन भटकता रहता है और वह सर्वार्थक रहता है किन्तु जब योगी ने मन को इकट्ठा करके धारणा की ओर लगा करके वृत्तिवृन्द के द्वारा एक विषयक बनाने की चेष्टा की तो उसके अन्दर कुछ एकाग्रता के धर्म पैदा होने लगे और इस धारणा के अनवरत अभ्यास करते रहने पर ज्यों–ज्यों मन की अपनी ताकत बढ़ी त्यों ही उसके अन्दर एकाग्रता परिणाम आ गया और वही सर्वार्थक मन ध्यान के रूप में बदल गया। यहाँ से ही योगी की अन्तर्मुखी वृत्ति का आरम्भ हो जाता है और मोक्ष–मार्ग की ओर बढ़ने लगता है, कठोपनिषद् में नचिकेता को उपदेश देते हुए भगवान यमराज ने यह स्पष्ट कहा है कि–मनुष्य अन्तर्मुखी वृत्ति के द्वारा ही परम श्रेय को प्राप्त कर सकता है।

पराञ्चिखानि व्यतृणत्सव यम्भूस्तस्मात्पराङ पश्यति नान्तरात्मन्। कश्चिद्धरिः प्रत्यमात्मान मैक्षदावृत्ति–चक्षुरमृतत्वमिच्छन।।

अर्थात् परमात्मा ने सारी इन्द्रियों को बाहर की ओर देखने वाला बनाया है। इसलिये वह परान्पश्यन का काम करते है किन्तु संसार में कोई–कोई धीर पुरुष इस प्रकार के होते हैं तो अपने बाहर के इन्द्रिय–व्यापार को बन्द करके उस प्रत्यगात्मा को देख पाते हैं। उस नित्य चेतन घन परम प्रभु को जानने के लिये बहुत आवश्यक है कि हम ध्यान योग के अभ्यासी बन जायें। हमें शास्त्र स्पष्ट आज्ञा देता है–

नचक्षुषा गृह्यते नापि वाचानान्यैर्दे–वैस्तपसा कर्णणावा,
ज्ञान प्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्तस्तु तं पश्यन्ते निष्कलं ध्यायमानः।

अर्थात् वह सच्चिदानन्दघन में चक्षुओं से देखा जा सकता है न दूसरी इन्द्रियाँ प्राप्त कर सकती हैं। केवल मात्र ज्ञानानुभूति से ही निरन्तर ध्यान करते हुए मुनि लोग उसके तत्त्व को जान सकते हैं। अतः ध्यान योग के द्वारा ही योगी अन्तरमुखता को प्राप्त होकर अपने ध्येय को प्राप्त कर लेता है और यहाँ आकर उनका मनोबल और भी अधिकाधिक विकसित हो जाता है। हमारे पूर्वाचार्यों का कथन है कि–

यदि शैलसमं पापं विस्तीर्ण बहुयोजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन।।

अर्थात् पाप का फैला हुआ पहाड़ भी हो तो वह ध्यान योग के द्वारा नष्ट हो जाता है। उसके नष्ट करने का और कोई उपाय नहीं है। इसका कारण केवल मात्र यह है, ध्यान मन में पूर्ण सतोगुण उदय होने पर ही स्थिर रह पाता है। जब तक मन के अन्दर रज और तम

की वृत्तियाँ अग्रणी रहती है तब तक मन अन्तरमुखता की ओर बढ़ ही नहीं पाता और अन्तरमुखता प्राप्त हो जाने के बाद रज और तम की वृत्तियाँ दिनों–दिन क्षीणता को प्राप्त होने लगती हैं और उत्तरोत्तर ज्ञान और तेज का विकास होने लगता है। इसलिये ऐसा मन विवेकख्याति की ओर बढ़ता चला जाता है और उसके पाप इस प्रकार से नष्ट हो जाया करते हैं जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अन्धकार हट जाता है। अस्तु, क्योंकि मन ध्यान में अन्तर्मुखी होता है वह बाह्य जगत से नाता तोड़कर अन्तरात्म में होने वाले विविध प्रकार के सत्व तेज प्रधान दृश्यों को देखता है और ज्यों–ज्यों अंतरजगत के दृश्य उसके सामने आते हैं, त्यों–त्यों उसका बाह्य जगत से एक प्रकार का नाता टूट सा जाता है और पूर्ण वैराग्य का उदय अपने आप ही होने लगता है, यदि ऐसा समय में कोई तत्ववेत्ता गुरुदेव नियंत्रक हो अपने शिष्य को बाह्य जगत से हठात् रोक करके अंतरमुखी वृत्ति के द्वारा विवेक ख्याति की ओर खींच ले जाये। किन्तु यहाँ पर उसी नियम को याद रखना चाहिए जो धारणा के वर्णन में पहले बतलाया जा चुका है। यद्यपि धारणा से बढ़ी हुई योग्यता के अनुसार मन ध्यान–परायण हो गया किन्तु फिर भी यदि यह अपनी इस अमूल्य निधि को सम्भाल कर न रख सका तो सम्भव है बाहर के वासनामय दृश्यों की ओर मन को लगा देने पर खो बैठे। यदि अपने इस धन को साधक लापरवाही से खो देता है तो उसका अभ्योत्थान बहुत ही कठिन हो जाता है। क्योंकि हमारे शास्त्र का कथन है–

न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य
न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हदा मनीषी मनसाऽभिक्लृप्तो
य एतद्विदुर मृतास्ते भवन्ति।।

अर्थात् उस प्रत्यगात्मा को आँखों से नहीं देखा जा सकता। हृदय में मनन करने से मनन करने वाली बुद्धि के ही द्वारा प्राप्त किया जा सकता है और जो पा लेता है वह अंदर हो जाया करता है। जो इसको पाने की इच्छा करता है वह तीव्रतम तत्तपश्चर्या करे। पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे। इस लोक में होने वाले और परलोक में होने वाले सभी प्रकार के भोगों का त्याग करे तभी आगे बढ़ सकता है। जो लोग किसी विशेष प्रारब्ध के बल से गुरुदेव की अनुकम्पा को पाकर के इस ध्यान निधि को पा लेता है वह अपनी इस कमाई को कायम रखने के लिये पूर्णतम का आचरण करे, किसी प्रकार का अहंकार न करे, क्रोध और राग द्वेष आदि को त्याग दे, तभी यह ध्यान की सम्पत्ति मन में कायम रहेगी और उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त होती रहेगी। ज्यों–ज्यों योगी ध्यान योग का अभ्यास करेगा त्यों–त्यों उसके

स्वभाव से ही संकल्प सत्य होने लगेंगे, इस प्रकार से वह अपने संकल्पों में सत्य को अनुभव करेगा। ऐसे ध्यान योगी के विषय में योगाचार्यों ने कहा है—

यम् यम् चिन्तयन्ते कामं
तम् तम् प्राप्नोति निश्चितम्।

अर्थात् जिन–जिन कामनाओं की वह चिन्ता करता है वह उसको कुदरती ही प्राप्त होने लगती है। ध्यान योग को भी भगवान पतंजलि देव ने सम्प्रात समाधि कहा है। सम्प्रज्ञात शब्द का अर्थ है जिसमें कुछ भी अनुभव होते रहें। सम्प्रज्ञात योग का अभ्यासी योगी, अतल, वितल, तलातल, रसातल, पाताल और भूध्यश्व मह: जन, तप: सत्यम आदि ऊपर के लोक इनका पूर्णरूपेण साक्षात्कार कर लेता है। ज्यों ज्यों अष्टांग योग के अभ्यास से साधक की ध्यान योग की स्थिति निर्मल होती चली जाती है, त्यों–त्यों उसका विवेक ज्ञान निर्मल होता रहता है। योग–दर्शन में भगवान पतंजलि देव ने अपने मुखारविन्द से यही भाव स्पष्ट रूप से कहे भी हैं।

योगाङ्गानुष्ठानाद शुद्धिक्षये
ज्ञान–दीप्तिरा विवेक ख्याते:।

अर्थात् योगाङ्गों का अनुष्ठान करने से जब तक पूर्ण विवेक ज्ञान नहीं प्राप्त होता तब तक उत्तरोत्तर ज्ञान–दीप्ति होती रहती है। जैसे ही योगी का सत्य इतना निर्मल हो जाता है कि वह रज व तम को बिल्कुल दबा–सा देता है तो उसको स्वत: ही सत्य संकल्पता प्राप्त हो जाती है। वह जो–जो संकल्प करता है वह सभी अनायास ही सफल होने लगते हैं। यहाँ पहुँच करके ही मनुष्य को ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त होती है। योग–दर्शन में बतलाया गया है कि—

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा

इस सूत्र का भाष्य करते हुए भगवान् व्यासदेवजी लिखते हैं—

तस्मिन समाहितचित्तस्य या प्रज्ञा जायते तस्या ऋतम्भरेति संज्ञा भवति, अन्वर्था च सा सत्वमेव विभर्त्ति, न तत्रं विपर्यासगन्धोऽप्यस्तीति तथा चोक्तम।

अर्थात् इस सम्प्रज्ञात समाधि में चित्त के समाहित होने पर स्वत: ही ऋतम्भरा प्रज्ञा प्रगट हो जाती है और ''ऋत: सत्य मेव विभर्ति'' वह ऋत अर्थात् सत्य को ही धारण करती है। यहाँ पर मिथ्या ज्ञान लवलेश मात्र भी नहीं रहता। ऋतम्भरा प्रज्ञा सुतानमान संस्कारों से और ही प्रकार की होती है क्योंकि वह विशेषार्थ को धारण करती है। इस प्रज्ञा के पैदा हो जाने पर योगी सत्य संकल्प हो जाता है। अर्थात् अभ्यास करने पर और श्री गुरुदेव की अनुकम्पा को प्राप्त करके ज्यों–ज्यों योगी का मन ध्यान योग के अभ्यास में अविच्छन्न गति

से बराबर चलने लगता है, त्यों-त्यों ही उसके मन को समाधि के धर्म प्रगट होने लगते हैं।

समाधि

ध्यान और समाधि में अन्तर केवल मात्र इतना ही है कि ध्यान में योगी त्रिक ज्ञान की स्थिति के अनुसार अपने आपको ध्येय से अलग देखता है और ध्येय को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहता है। किन्तु इसका प्रयत्न व्यर्थ नहीं होता। मनुष्य को घबराना नहीं चाहिये पहिले नियम को सामने रखना चाहिये।

स तु दीर्घ कालनैरन्तर्य

सत्कारासेवितो दृढ़ भूमिः।

अर्थात् लम्बे समय तक लगातार और आदरपूर्वक किया हुआ ही अभ्यास फल का दाता होता है। इसलिए योगी धैर्यपूर्वक ज्यों-ज्यों अपने ध्यानाभ्यास को बढ़ाता है, तभी वह समाधि का अधिकारी बनता है और उसका मन त्रिक ज्ञान को छोड़कर ध्येयाकार में परिवर्तित होने लगता है। ध्यानावस्था में साधक ध्याता था और अपने इष्टदेव का ध्यान करता था उस अवस्था में ध्याता, ध्यान और ध्येय, ये तीनों वस्तुयें अलग-अलग भासित हो रही थीं किन्तु समाधि प्राप्त होने पर भगवान् पतंजलिदेव बतलाते हैं कि–

तद्वेवार्थमात्र निर्भासं

स्वरूप शून्यमिव समाधिः।

अर्थात् जिसमें अर्थमात्र ही निर्भासित होता रहे और अपना स्वरूप भी प्रायः समाप्त हो जाये। साधक की अपनी वृत्ति तदाकार वृत्ति होकर ध्येयाकार में पूर्णरूपेण परिपक्व हो जाए, उसी स्थिति का नाम समाधि है। उपनिषद् हमें बतलाते हैं–

समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनः।

अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा की समतावस्था को समाधि कहते हैं जिसमें मैं ईश्वर से भिन्न हूँ ऐसी वृत्ति समाप्त होकर, मैं स्वयं वही हूँ ऐसी वृत्ति ही कायम रहने लगे और योगी अपने आपको प्राणीमात्र के अन्तःकरण के अन्दर देखने लगे तो समझ लेना चाहिए कि उसकी योग्यता है। जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने मुखारबिन्द से श्रीमद्भागवत् में गीता के अध्याय 6 में स्वयं कहा है–

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्व भूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।

गीता 6 : 29

अर्थात् प्राणीमात्र में अपने आपको और प्राणीमात्र को अपने अन्दर केवल मात्र उक्तयोगी ही देखता है। अन्य नहीं। यह स्थिति योगी को समाधि में ही उपलब्ध हो पाती है। जिस योगी का मन समाधिवान् बन जाता है और उसकी समाधि यथार्थ रूप को धारण कर लेती है तो स्वत: ही संयम होने लगता है। संयम की परिभाषा भगवान पतंजलिदेव इस प्रकार लिखते हैं–

संयम

त्रयमेकव संयम:।

इस सूत्र पर भगवान व्यासदेवजी भाष्य लिखते हैं–

एक विषयाणि त्रीणि साधनानि संयम इत्युच्यते तदम्यत्र यस्य तान्त्रिकी परिभाषा संयम इति।

अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि तीनों एक विषयक होती रहे, तो ही मनुष्य संयम को प्राप्त होता है। कहने का अभिप्राय इस प्रकार समझ लेना चाहिए कि साधक जिस समय धारणा का अभ्यास करे, वह धारण केवल एक ध्येय का ही अवलम्ब करने वाली हो किसी भी प्रकार से प्रत्यान्तर प्रगट न हो। धारणा काल में जिस ध्येय का चिन्तन किया जाये उस चिन्तन स्थिति में कोई दूसरा ध्येय कल्पना से भी सामने न आये और इसी प्रकार से ध्यान काल में वृत्ति एकाग्र होने पर किसी भी प्रकार से चित्त किसी दूसरे ज्ञान को बिल्कुल छुए तक नहीं और वही धारणा–काल में चिन्तन किया हुआ, ध्येय उसके सामने प्रकट हो जाये तो समझ लेना चाहिए कि उसने ध्यान की भूमिका पर विजय प्राप्त कर ली है किन्तु इतना हो जाने के बाद योगी को आलस्य व प्रमाद नहीं करना चाहिए जिससे कि वह अपने मन में समझ बैठे कि मैंने पूर्णता को पा लिया है आगे कुछ भी प्राप्तव्यावशेष नहीं है। ऐसी भावना बन जाने पर योगी को अन्तराय घेर लेंगे और वह समाधि तक नहीं पहुँच पायेगा। जब इस प्रकार के आलस्य व प्रमाद से बचकर योगी अपने ध्येय का ही अवलम्ब लेकर आगे बढ़ने का प्रयत्न करेगा तो उसके ध्यान का नाम भी कोई दूसरा ज्ञानास्पर्श नहीं करेगा और शनै:–शनै: उसका मन समाधि रूप में परिवर्तित हो जायेगा। समाधि हो जाने पर भी योगी की वृत्ति किसी और विषय में तदाकार न हो तब वह समाधि पर पूर्णरूपेण विजय प्राप्त कर लेगा और उसको संयम सिद्ध हो जायेगा। संयम सिद्ध हो जाने के बाद उस संयमित मन को योगी जहाँ–जहाँ लगायेगा वहाँ–वहाँ की शक्तियों को अवश्य प्राप्त कर लेगा। इसी सिद्धान्त को लेकर समाधि पर विजय प्राप्त करने वाला योगी सिद्धि–शक्तियों का भण्डार बन जाता

है वह जिस प्रकार की जिस ताकत को प्राप्त करना चाहता है उसको वह ताकत बराबर उपलब्ध होती चली जाती है और ज्यों–ज्यों वह योगी संयम पर विजय प्राप्त करता है त्यों–त्यों उसके सामने समाधि प्रज्ञा स्पष्ट रूप से प्रगट होती चली जाती है। भगवान पतंजलि देव कहते हैं–

तज्जयात प्रज्ञाऽऽलोकः।

अर्थात् संयम सिद्ध हो जाने पर योगी को प्रज्ञा लोक हो जाता है। श्री व्यासदेव भाष्य में लिखते हैं–

तस्य संयमस्य जयात्समाधि प्रज्ञाया भवत्या लोकः यथा यथा संयमः स्थिर–पढो भवति तथा तथा समाधिप्रज्ञा विशारदी भवति।

अर्थात् जैसे–जैसे संयम स्थिर पद को प्राप्त होता है वैसे–वैसे ही समाधि प्रज्ञा निर्मल होती चली जाती है। इस प्रकार योगी संयम सिद्ध हो जाता है और संयम सिद्ध हो जाने पर–

तस्य भूमिषु विनियोगः।

अर्थात् संयम सिद्ध हो जाने के बाद उस संयम की भूमिकाओं में विनियोग किया जा सकता है। जैसा कि हमने पहिले बता दिया है, संयमी मन को जहाँ लगायेंगे वह वहाँ के अर्थ ज्ञान को प्राप्त कर लेगा। योगी को चाहिये पहले–पहले संयम का विनियोग साधारण भूमियों में ही करे, जैसे परिधि संज्ञा रूपदर्शन, गन्ध साक्षात्कार, रसावलोकन आदि के हर स्वरूप को जानने के लिये तालु में संयम करें, दिव्य शब्द सुनने के लिए जिह्वा मूल में संयम करे और रसास्वादन के लिये जिह्वा के अग्रभाग में संयम करे। दिव्य घ्राण ग्रहण करने के लिये नासिकाग्र भाग में संयम करें। यह योगी के संयमित मन के पहले विषय है। जिनमें संयम करने वह मोटे–मोटे ज्ञान प्राप्त कर लेगा। कदाचित् कोई योगी यकायक आत्म साक्षात्कार के लिये संयम करता है तो वह विफल हो सकता है जिस प्रकार से पहली, दूसरी श्रेणियों में अध्ययन करने वाला व्यक्ति एम. ए. के कोर्स को नहीं पढ़ सकता। पढ़ने वाला और पढ़ाने वाला दोनों का प्रयास व्यर्थ हो जाता है। इसी प्रकार छोटी भूमिकाओं की संयम के बिना जो योगी ऊँची भूमिकाओं में संयम करने का प्रयत्न करता है, उसके सामने इतनी निराशा हो जाती है कि वह कभी फिर संयम की ओर चलने का प्रयत्न भी नहीं करता। हाँ एक बात अवश्य है उसको भगवान व्यास देव ने भाष्य में प्रकट कर दिया है–

ईश्वर प्रसाढ़ाज्जितोत्तर भूमिकस्य च नाधर भूमिषु पर चित्तज्ञानादिषु संयमा युक्तः कस्मात् तदर्थस्यान्यत एवावगेतत्वाद।

अर्थात् जिसने ईश्वर निग्रह से आग की भूमिकाओं को जीत लिया है उसको फिर निम्न श्रेणियों में संयम करने की आवश्यकता नहीं। कई इस प्रकार के बुद्धिमान छात्र होते हैं तो स्कूलों में बाकायदा कोर्स को न भी करते है हाई स्कूल, इंटर, बी. ए. आदि की परीक्षाएँ सीधे दे डालते हैं, इस प्रकार के छात्रों को अपने पुरुषार्थ से नीचे की परीक्षाएँ देने की आवश्यकता नहीं रहती इसी प्रकार जो लोग ईश्वर की परम कृपा से जीवित भूमि हो जाते हैं उनको फिर नीची श्रेणियों के संयम करने की आवश्यकता नहीं रहती। उनका मन संयमित हो चुका है उसको वह जहाँ लगायेगा वहाँ का फल–भागी हो ही जायेगा। इसलिये भगवान् पतंजलि देव ने संयमित मन वाले योगी के लिये बहुत से विषय लिखे हैं जिनमें साधारण अभ्यास के बाद योगी संयम कर सकता है और वहाँ–वहाँ के ज्ञान को प्राप्त करके एक विशेष शक्ति को अपने अन्दर संग्रहीत कर लेता है थोड़ी देर के लिए योगी परिचित ज्ञान को प्राप्त करना चाहता है। भगवान् पतंजलि देव बतलाते हैं–

प्रत्ययस्य परिचित्तज्ञानम्।

अर्थात् दूसरे के चित्त में संयम करने से योगी को उसका ज्ञान हो जाता है किन्तु वह चित्त किस रंग में रंगा हुआ है वह ज्ञान योगी को तभी होगा जब वह यह जानने की इच्छा करेगा कि ...का चित्त किस विषय का अवलम्ब कर रहा है। पहले पहल परिचित साक्षात्कार के लिये उस व्यक्ति के हाव–भाव को देखकर उसके चित्त को जानने की इच्छा करता है और संयम करता है। संयम के अतिरिक्त सर्वसाधारण व्यक्ति भी इंगितों से चित्त के स्वरूप को कुछ–कुछ अनुमान कर लिया करते हैं। नीति शास्त्र का वचन है–

आकारै रेंगिन्तै गत्या चेष्टया भाषणेन च।
नेत्र वक्र विकारैश्च ज्ञायते अन्तर्गतम् मनः।।

अर्थात् आकृति को देखकर, इशारों को देखकर, चलने की गति को देखकर, शरीर की हरकतों को देखकर, आँख और मुख के विकारों को देखकर भीतर का मन जाना जाता है। एक मनुष्य ने देखा कोई व्यक्ति बड़ी ही प्रसन्न मुद्रा में आ रहा है उसको देखकर सर्वसाधारण मनुष्य अवश्य कह ही देगा क्यों जी आज तो आप बड़े खुश मालूम पड़ते हैं ? क्या मिल गया हमें भी तो बता दीजिये और उसका वह अनुमान गलत नहीं होता, कदाचित् वह व्यक्ति नहीं बतलाये तो योगी उसके प्रसन्न मुद्रावाले चित्त को ही अपने संयम का विषय बनायेगा और संयम करने पर वह यह अवश्य जान ही लेगा कि हाँ अवश्य यह प्रसन्न है ही। किन्तु यह प्रसन्न क्यों है किस कारण से है वह जानने का विषय योगी ने अपने संयम को

नहीं बनाया है। अभी तक तो योगी ने अपने संयम का विषय केवल इतना ही बनाया था कि वह व्यक्ति जो आकाश–इंगित और गति आदि से प्रसन्न काल में पड़ता है वह वस्तु तो प्रसन्न है ही या नहीं उतना ही उसने जान लिया, वह व्यक्ति प्रसन्न अवश्य है। अब वह क्यों प्रसन्न है और कैसे प्रसन्न है इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिये योगी को दूसरे के चित्त के विषय के अन्दर संयम करना पड़ेगा। तब वह यह जान पायेगा कि इसके प्रसन्न होने के ये कारण हैं। यहाँ पर चित्त ज्ञानादि योगी के संयम के मोटे विषय हैं। उसके बाद वह जहाँ–जहाँ संयम करेगा, उस विषय को अवश्य–अवश्य जान लेगा। यही एक उपाय है जिसको प्राप्त करके मनुष्य ज्ञान–विज्ञान–तृप्तात्मा–हो जाता है। वह प्रकृति के जिन–जिन विश्लेषणों को समझना चाहता है समझ लेता है। वह तत्त्वों के परिणाम को जान लेता है। उसके अन्दर इस संयम के आधार पर यह ताकत आ जाती है कि यदि वह चाहे अपने शरीर को बालरूप बनाये रखे, यदि वह चाहे युवा बनाकर रहे, यदि वह चाहे तो अपने आपको अति वृद्ध दिखलाये। आकाश गमन, परकाय प्रवेश, लोकोत्तर ज्ञान–यह सभी संयम सिद्ध योगी के लिये साधारण योग विद्या को **''यस्मिन् ज्ञाते सवमिदं ज्ञातं भवतिः।''** ऐसा कहा है अर्थात् जिसके जान लेने पर सब कुछ जान लिया जाता है। वह हमारी योग विद्या है। इस लेख में हमने यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि योगी अपने अन्दर शक्ति संचारित इस उपाय से कर सकता है। योगी के पास संयम ही एक इस प्रकार की निधि है कि जिसको पाकर वे लोग आकाश व पाताल को जानते हैं एक भूत–भविष्य के ज्ञाता हैं और कर्तुमकर्तू के ताकत वाले हैं। सर्व–साधारण को चाहिए कि योग के पवित्र मार्ग को ग्रहण करते हुए वह अपने आपको सशक्त बनायें एवं जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहें। यदि वह अपने आप को उस पवित्र उन्नति के मार्ग पर बढ़ाने का प्रयत्न करेगा तो सर्वशक्तिवान् महा प्रभुजी की शक्ति उसकी अवश्य सहायक होगी और वह अपने चरम लक्ष्य को पायेगा।

सम्पादकीय–

गुरु पूर्णिमा का अमृत पर्व

आचार्य (डा.) दासलाल जी महाराज

हमारे देश में गुरु पूर्णिमा व व्यास पूर्णिमा–व्यास पूजा का पावन पर्व अषाढ़ माह की पूर्णिमा को बड़े धूमधाम व उल्लास से मनाया जाता है। ईश्वर प्रदत्त अद्भुत ज्ञान राशि वितरण गुरु परम्परा से अनादि काल से चला आ रहा है।

परमात्मा ज्ञान के उस अथाह भण्डार से गुरुदेव द्वारा ही वह दिव्य ज्ञान संचारित होकर मानव धरातल तक पहुँचता है। जिससे सामान्य व्यक्ति भी इस ज्ञान का ग्राहक बन जाता है, बशर्ते व्यक्ति इस विद्या का उचित अधिकारी हो। गुरु मुख से ही परमात्म ज्ञान का श्रवण करके साधक अपने परमार्थ पथ पर चला करता है। गुरु मुख से प्राप्त विद्या ही फलदती होती है। गोविन्द से भी गुरु की महिमा अधिक बताई गई है। कहा है कि–

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पाँव।
ब[illegible]री गुरु आपनो गोविन्द दियो लखाय।।

गुरु कृपा से ही ईश्वर के दर्शन संभव होते हैं। इसलिए प्रथम पूजा गुरुदेव की ही पूजा की जाती है। तत्पश्चात् गोविन्द की। सभी महान सन्तों ने गुरु की महिमा गाई है। गुरु शब्द (क्रयादिगण) तथा गृ निरारणे इन दो धातुओं का व्युत्पन्न होता है। **'गृह्णति उपदिशदि धर्मतिमति–गुरुः'** जो योगधर्म का उपदेश करे वही गुरु है। **''यदा गीर्यत स्तूयते देव–गन्धर्वा दिभिरिति गुरुः।''** अथवा देव गन्धर्वादि जिसकी स्तुति करते हैं वह गुरु है। जो गुरु वही पूर्ण है। गुरु वह है जो गरिमामय है। जिसमें गुरुत्वाकर्षण है जीवों को अपनी ओर खींच लेते हैं। जो सबसे बड़ा है सर्व समर्थ, व्यापक है, अनन्त है। पूर्णत्व गुरुत्व में ही है। उस पूर्ण सत्ता को ही शास्त्रों की भाषा में ब्रह्म कहते हैं। अर्थात् जो सर्वत्र व्याप्त है। **''सर्व समाप्नोषि ततोऽसि सर्व–**(गीता) जो सबको अपने में समेट लेता है। इसलिए वह सर्वरूप है। उसे सर्वगत भी कहा जाता है। सर्वगत होने से ब्रह्म पूर्ण है। उपनिषद् में मंत्र आता है। **''पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते।''** अर्थात् वह ब्रह्म पूर्ण है। यह जगत भी उससे व्याप्त होने के कारण पूर्ण कहा गया है। पूर्ण में से पूर्ण निकाल देने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है। यहाँ पर पूर्ण शब्द ब्रह्म की अभिव्यक्ति के लिए ही व्यवहृत हुआ है। श्रुति में **'रसो वै सः'** कहकर ब्रह्म को रसरूप में माना है। रसों का मूल स्रोत चन्द्रमा है। पूर्ण चन्द्रमा में अमृत बनता है। वह अमृत ही रसरूप ब्रह्म है। गुरु में भी अमृत्व है। शिष्य को

अमृत अमर बना देने की सामर्थ्य गुरुदेव में ही होती है, अन्य किसी में नहीं। गुरु पूर्ण समर्थ होता है चेतना का महास्रोत होता है। भगवान का अवतरण समय–समय पर इस संसार में होता चला आ रहा है। जब वे मानवाकृति में आते हैं, तब वे अपने सदुपदेश से, अपने दिव्य संस्पर्श से, लोकोत्तर चरित्र से जीव के कल्याण के लिए कृत संकल्प रहते हैं। इस रूप में भगवान का ऐसा मिलन जीव का आध्यात्मिक एवं भौतिक उभय मिलन होता है। उस समय वे गुरु शिष्य के रूप में ही होते हैं। उस क्षण जीव उस परम गुरु अर्थात् अपने इष्ट को पाकर यह भूल जाता है कि वह जन्मने और मरने वाला जीव है। वह इष्ट के रूप में तदाकार हुआ सिद्ध समर्थ गुरु अपने शिष्य के आत्मोत्थान के लिए मानव शक्ति का संचार करके शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक मन के शोधन के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार की क्रियायें कराते रहते हैं।

भगवान कृष्ण गीता में मन और बुद्धि को इष्ट के सगुण रूप में समाहित कर देने की बात कहते हैं। भगवान की कृपा से जीव के मन और बुद्धि को अपने में विलय करा लेते हैं। जिससे जीव जीवत्व को त्याग कर ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है। उस परम भाग्यशाली जीव को भगवान जीव ब्रह्मैक्य का बोध करा देते हैं। यही भगवान के अवतरण का रहस्य एवं उद्देश्य है। भगवान के इसी गुरुत्व के आकर्षण के कारण ही वे जगद्गुरु कहलाते हैं। जीवों का इस प्रकार परम गुरु से मिलन सहसा संयोगवश नहीं होता है। जन्म जन्मान्तर की उस आत्मदेव से मिलने की चाह तद्भावना भक्ति होकर उस जन्म के दृढ़ संस्कार सम्बन्ध के स्थापित होने पर यह बात संभव हो जाती है। अन्यथा परात्पर शक्ति के पृथ्वी पर आविर्भाव होने पर भी उनके निकट सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति भी अपने कर्मों की मलीनता से भगवान के निन्दक ही बनकर जीवन बिता देते हैं। हम में से बहुत से भाग्यवान पुरुषों ने उस परम देव का श्री चन्द्रमोहन जी महाराज सद्गुरु रूप में दर्शन एवं पावन सानिध्य का परम लाभ प्राप्त किया है। उनके पावन चरण तल में बैठने पर जीव की समस्त कामनायें एवं वासनायें विलुप्त हो जाती थीं। परम शांति एवं आनन्द का साम्राज्य छा जाता था। प्राण स्वतः ही निश्चल हो जाता था। सभी उपस्थित शिष्य समुदाय का जिनके गुरुदेव ही एक मात्र परायण एवं जीवन के सूत्रधार हैं यह देखकर **'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणित्रणा इवा'**–यह वचन मानस पटल पर घूमने लगता था।

ऋषि कल्प गुरुदेव के देदीप्यमान मुखमण्डल को देखकर अध्यात्म की किरणें स्वतः शिष्यों के मानव तल को स्पर्श कर लिया करती थीं। गुकार अन्धकार का वाचक है और रुकार अन्धकार निवारक या प्रकाश देने वाला। जो अन्धकार अज्ञान को दूर कर शिष्य के हृदय में ज्ञान की ज्योति जला दे वही गुरु है–ऐसा गुरुगीता का वचन है। **''नास्ति त्वं गुरोः परम।''** गुरुदेव से आगे कोई तत्व नहीं यह भगवान सदाशिव का आदेश है। शिष्य का

जीवन–मृत्यु समर्थ गुरुदेव के हाथ में होता है। आवश्यकता है शिष्य के गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण की जो काफी दुःसाध्य है। योग से जीवन और ब्रह्म का एकत्व होता है। गुरु भक्ति से गुरु शिष्य का एकत्व हो जाता है। जो शिष्य के जीवन का लक्ष्य रहा करता है। इसीलिए नित्य ही गुरु गीता के इस श्लोक का मनन करता हुआ कहता है–

नित्यं शुद्धं निराभासं निराकारं निरंजनम्।
नित्यबोधंचिदानन्दं गुरु ब्रह्म नमाम्यहम्।।

अर्थात् जो नित्य है, शुद्ध है, आभास रहित, आकार रहित, माया रहित, नित्य बोध स्वरूप, चेतन और आनन्द रुप ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार गुरु की सेवा से, चिन्तन से शिष्य गुरु की उपासना करता है वह भव बन्धन से मुक्त हो जाता है। इसलिए गुरुदेव के भवभय विनाशक कहा गया है। गुरुदेव स्वयं मंत्र स्वरूप होकर शिष्य के आध्यात्मिक शरीर में अनुप्रविष्ट तत्पश्चात् शिष्य को अपने नित्य चैतन्य स्वरूप का बोध कराते हैं। शास्त्रों का लेख है–

''गुरु पूजा विहिनानाम् न सिद्धिः स्याद्कदाचन''। जो गुरुदेव की पूजा आराधना नहीं करते तथा गुरुदेव को संतुष्ट नहीं रखते उन्हें कभी सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। जो गुरुदेव के दिये मंत्र का जाप करता रहता है तथा गुरुपदिष्ट मार्ग से ध्यान करता है वही गुरुदेव का प्रिय भक्त होता है और उसे ही अन्तर्ज्ञान प्राप्त होता है।

अतः शिष्य को गुरु निष्ठ रहना चाहिए। फिर उसके लिए भूतल में कुछ भी अप्राप्त नहीं रह जाता। इस बार गुरु–पूर्णिमा 03 जुलाई, 2023 को सम्पन्न होनी है।

संसार

अधिकांश व्यक्ति संसार को दुःख और अशांति का घर समझते हैं। बहुत थोड़े व्यक्ति संसार को सुख और सौन्दर्य का धाम मानते हैं वस्तुतः संसार में सुख और दुःख दोनों होते हैं परन्तु दुःख की अपेक्षा सुख अधिक होता है। संसार का सुख या दुःख पूर्ण होना मनुष्य की अपनी मन अवस्था पर निर्भर होता है। अतः संसार के वास्तविक स्वरूप को भली–भांति जानें और समझकर अपने को संसार के योग्य और संसार को अपने योग्य बनाना कल्याण प्रद होता है।

लोग संसार की निन्दा करते हैं। संसार की निन्दा करने की अपेक्षा उसका रहस्य जानना उत्तम है। लोग संसार की उपेक्षा करते हैं। उपेक्षा करने से उसका अध्ययन करना श्रेयस्कर है। लोग संसार का दुरुपयोग करते हैं। दुरुपयोग करने की अपेक्षा उसका सदुपयोग करना कल्याणकारी है।

–श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक

श्री रामलाल प्रभवे नमः

शोक संवेदनाएँ–

(1) श्री प्रेमनारायण बाजपेयी का देहावसान

हमारे गुरुभाई विगाड़ी कानपुर देहात के रहने वाले श्री प्रेमनारायण बाजपेयी बहुत ही गुरु निष्ठ साधक हुये हैं। वे पेशे से अध्यापक थे। बहुत ही गुरुनिष्ठ साधक थे। अपनी आय का लगभग सारा धन वे आश्रम की सेवा में लगा दिया करते थे। उनका यह क्रम श्री गुरुदेव जी के समय से ही बना हुआ था। अवकाश प्राप्त करने के बाद वे आश्रम में ही रहने लगे और अपना सारा समय योग साधना में ही लगाने लगे। वे बहुत ही मृदुभाषी थे। किसी के प्रति राग–द्वेष नहीं रखते थे। गुरु मन्त्र पर उनका दृढ़ विश्वास था अपने घर के बच्चे को ही वे यही कहा करते थे कि अत्यन्त श्रद्धापूर्वक मन्त्र का जाप करो सारे कष्ट दूर होते चले जायेंगे। आश्रम वासी उन्हें अत्यन्त श्रद्धा से देखते थे। बाहर के गुरुभाई भी वैसे ही भाव रखते थे। सभी का पूरा हाल–चाल पूछा करते थे। वे अविवाहित थे। पैरों से थोड़ा कमजोर थे चलने में कठिनाई होती थी। धीरे–धीरे चला करते थे। पिछले बहुत महीनों से उनका स्वास्थ्य खराब रहने लगा।

मार्च 2023 के प्रारम्भ में ही स्वास्थ्य काफी क्षीण होने लगा अतः घर जाने की इच्छा व्यक्त की। उनके छोटे भाई जगत नारायण बाजपेयी उन्हें घर ले गये। वहाँ उनका उपचार होने लगा। परिवार के सभी सदस्य उनकी सेवा में लगे रहते थे। वे मन्त्र जाप पर दृढ़ विश्वास करते थे और स्वयं जाप में लगे रहते थे। राग–द्वेष की बात कभी नहीं करते थे, उनमें एक उत्तम साधक के सारे गुण समाहित थे। मई के महीने में उनका स्वास्थ्य खराब होने लगा और 23 मई 2023 को उन्होंने शरीर छोड़ दिया। उनके बैकुण्ठवास के समाचार को सुनकर सभी भक्तगण अत्यन्त दुःखी हो गये। चारों तरफ से शोक संवेदना प्रेषित किये जा रहे थे। वास्तव में वे महान गुरुभक्त, साधक एवं योग अभ्यासी थे। वे अवश्य ही बैकुण्ठवासी हो गये हैं ऐसा हमारा विश्वास है उस महापुरुष को हमारा कोटि–कोटि नमन है।

(2) आचार्य श्री कृष्ण दत्त शर्मा का देहावसान

आचार्य श्री कृष्णदत्त शर्मा गुरुदेव के लाड़ले और कर्मठ शिष्य थे। 1978 जून में प्रथम बार वे ऋषिकेश योग साधन आश्रम में आये। सायं काल का समय था एक पीत

वस्त्र पहने सुडौल शरीर के ब्रह्मचारी आश्रम के अन्दर शेर के पास खड़े होते हैं। मैं उन दिनों आश्रम में ही रहता था उचित अभिवादन के बाद परिचय हुआ। कहने लगे "आचार्य महादेव जी के पास महेश योगी के संस्कृत विद्यालय में पढ़ रहा था बीच में ही काशी चला गया था। अब आया तो आचार्य जी ने मुझे योग साधन आश्रम में जाकर रुकने को कहा। मैंने कहा—ठीक है—यहीं रुकिये कोई चिन्ता की बात नहीं। 10–15 दिन बाद गुरुदेव जी का आगमन हुआ। वे गंगादशहरा के उत्सव सम्पन्न करने के लिये प्रतिवर्ष भाँति आये थे। श्री गुरुदेव से उनका परिचय हुआ। सुडौल, हंसमुख नवयुवक था वह। गुरुदेव ने उत्सव के पश्चात् यज्ञकाल में आने की अनुमति दे दी। यज्ञ काल में आचार्य प्रभू श्री महादेव जी के वेद पाठियों के साथ ये भी श्री सिद्धगुफा सवाई धाम चले गये। फिर वे वहीं के होकर रह गये। योग दीक्षा लेकर आश्रम की विभिन्न सेवाओं में लगा लेने लगे। गुरु देव ने उन्हें अपने भोजन बनाने के लिये नियुक्त किया। वे वत्स गौत्री ब्राह्मण बालक थे। नियमित योग–आसन करते थे और कराते थे। बहुत ही परिश्रमी साधक रहे हैं वे। आश्रम के हर कार्य में सिद्ध हस्त थे। गुरुदेव के लीलाद..न के पश्चात् खान–पान के व्यतिक्रम से उन्हें गठिया रोग ने घेर लिया और आजीवन इस रोग से लड़ते रहे। उन्हें गुर्दे का रोग हो गया। बहुत दिन तक इलाज चला। जयपुर और ऑल इण्डिया में भी इलाज चला। धीरे–धीरे गुर्दे का कैन्सर हो गया। बहुत बीमार रहने लगे। हेपिटिटस सी भी था लिवर में। डॉक्टरों ने उन्हें घर भेज दिया और कहा–इनकी सेवा करो। हम उन्हें देखने 15 मई को उनके घर विर्चपुर गये। हमें देख काफी भावुक हो गये। हमने भी सोचा शायद यह अब बचेंगे नहीं। उन्होंने कहा–तुम मेरे बड़े गुरुभाई हो मेरे सिर पर हाथ रखो। मैंने सिर पर हाथ रखा। एक घण्टा बैठने के पश्चात् कुछ धनराशि देकर विदा ली। 29 मई को उनका बैकुण्ठवास हो गया दूसरे दिन हम सवांई आश्रम से गंगा दशहरा के दिन उनके घर पर शोक संवेदना के लिए गये थे। सभी सेवा से संतुष्ट थे। सभी को धैर्य बंधा कर आश्रम वापिस आ गये। उन दिव्य मूर्ति को प्रणाम करता हूँ।

—आचार्य दासलाल जी महाराज
श्री सिद्धगुफा सवांई

"ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः"

श्रीमद्भागवत में योगपरिचर्चा

डा. विजय सिंह

उन्नीसवें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धव को भक्ति ज्ञान और यम–नियमादि साधनों का वर्णन किया है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–जो ज्ञान–विज्ञान से सम्पन्न पुरुष हैं, वे ही मेरे वास्तविक स्वरूप को जानते हैं। इसीलिये ज्ञानी पुरुष मुझे सबसे प्रिय हैं। ज्ञानी पुरुष अपने ज्ञान के द्वारा निरन्तर मुझे अपने अन्तःकरण में धारण करते हैं। तत्व ज्ञान के लेशमात्र का उदय होने से जो सिद्धि प्राप्त होती है वह तप, तीर्थ, जप, दान अथवा अन्तःकरण शुद्धि के और किसी भी साधन से पूर्णतया नहीं हो सकता।

ज्ञानविज्ञानसंसिद्धा पदं श्रेष्ठं विदुर्मम।
ज्ञानी प्रियतमोऽतो मे ज्ञानेनासौ बिभर्ति माम्।।3।।
तपस्तीर्थं जपो दानं पवित्राणीतराणि च।
नालं कुर्वन्ति तां सिद्धिं या ज्ञानकलया कृता।।4।।

अ. 19 स्कं. 11

प्रिय उद्धव! ऋषि मुनियों ने ज्ञान–विज्ञान रूप यज्ञ के द्वारा अपने अन्तःकरण में मुझे आत्मरूप में यजन करके परम सिद्धि प्राप्त की है। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक, इन तीन विकारों का समुच्चय ही शरीर है जो सर्वथा तुम्हारे आश्रित है। असत् वस्तु तो पहले नहीं थी, बाद में भी नहीं रहेगी। बीच में भी इसका कोई अस्तित्व नहीं होता।

उद्धव जी ने कहा–परमात्मन्। यह वैराग्य और विज्ञान से युक्त विशुद्ध ज्ञान जिस प्रकार सुदृढ़ हो जाये। वैसा मुझे समझाइये तथा भक्तियोग का भी वर्णन कीजिए, जिसे ब्रह्मा आदि महापुरुष भी खोजते रहते हैं।

उद्धव! महाभारत का युद्ध समाप्त हो चुका था धर्मराज युधिष्ठिर शोक–विह्वल थे, उन्होंने भीष्मपितामह से मोक्ष के साधनों के संबंध में प्रश्न किया था। भीष्मपितामह के मुख से सुने मोक्षधर्म मैं तुम्हें सुनाऊँगा।

उद्धव! जिस ज्ञान से प्रकृति, पुउष, महत्तत्व, अहंकार और पंच तन्मात्रा–ये नौ, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और एक मन–ये ग्यारह, पाँच महाभूत और तीन गुण इनको ही ब्रह्मा से लेकर तृण तक सब कार्यों में देखा जाता है। यह परोक्ष ज्ञान है। जब इन सब से अलग एक तत्त्व परम कारण ब्रह्म को ही सब जगह देखे तो अपरोक्षज्ञान कहा जाता है।

उद्धव जी! जो मनुष्य मेरे प्रति आत्म–निवेदन कर देते हैं, उनके हृदय में मेरी प्रेममयी भक्ति का उदय होता हैफ। जिसे मेरी भक्ति प्राप्त हो गयी, उसके लिये और किसी वस्तु का प्राप्त होना शेष रह जाता है? जिससे मेरी भक्ति हो, वही धर्म है। जिससे ब्रह्म और आत्मा की एकता का साक्षात्कार हो, वही ज्ञान है। विषयों से असंग रहना ही वैराग्य है और अणिमादि सिद्धियाँ ही ऐश्वर्य है।

धर्मो मद्भक्तिकृत् प्रोक्तो ज्ञानं चैकात्म्यदर्शनम्।
गुणेष्वसंगो वैराग्यमैश्वर्यं चाणिमाद्य:।।27।।

अ. 19 स्कं. 011

उद्धव जी ने कहा–रिपुसूदन। (1) यम–नियम कितने प्रकार के हैं ? (2) सम क्या है ? (3) दम क्या है ? (4) तितिक्षा और धैर्य क्या है ? (5) दान, तपस्या, शूरता, सत्य और ऋत् का स्वरूप क्या है ? (6) त्याग क्या है ? (7) अभिष्ट धन क्या है ? (8) यज्ञ किसे कहते हैं ? (9) दक्षिणा क्या है ? (10) पुरुष का सच्चा बल क्या है ? भग किसे कहते हैं ? (11) लाभ क्या है ? (12) उत्तम विद्या, लज्जा श्री तथा सुख दु:ख क्या है ? (13) पण्डित और मूर्ख के लक्षण क्या हैं ? (14) सुमार्ग और कुमार्ग क्या है ? (15) स्वर्ग–नरक क्या है ? (16) भाई–बन्धु किसे मानना चाहिये ? (17) घर क्या है ? (18) धनवान और निर्धन किसे कहते हैं ? (19) कृपण कौन है ? (20) ईश्वर किसे कहते है ? प्रभो! आप मेरे इन प्रश्नों का उत्तर दीजिये।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा–(1) यम बारह हैं। अहिंसा, सत्य अस्तेय (चोरी न करना), असंगता, लज्जा, अपरिग्रह, आवश्यकता से अधिक धन आदि संचय न करना, आस्तिकता ब्रह्मचर्य, मौन, स्थिरता, क्षमा और अभय। नियम ने बारह हो शौच (बाहर–भीतरी पवित्रता) जप, तप, हवन, श्रद्धा, मेरी, पूजा, अतिथि सेवा, तीर्थयात्रा, परोपकार की चेष्टा, संतोष और गुरु सेवा। जो सकाम भाव से पालन करते हैं उन्हें भोग और जो निष्काम भाव से करते हैं, उन्हें मोक्ष प्राप्त होता है। (2) बुद्धि का मुझमें लगना 'शम' है। (3) इन्द्रिय का संयम 'दम' है। (4) दु:ख के सहने का नाम 'तितिक्षा'। (5) जिह्वा और जननेन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना 'धैर्य' है। (6) सबको अभय करना 'दान' है। (7) कामनाओं का त्याग ही 'तप' है। वासनाओं पर विजय प्राप्त करना 'शूरता' है। सत्यस्वरूप परमात्मा का दर्शन ही सत्य है। सत्य और मधुर साधना 'ऋत' है। कर्मों में आसक्त न होना 'शौच' है। कामनाओं का त्याग ही सच्चा 'संन्यास' है। धर्म ही धन है। मैं ही यज्ञ हूँ। ज्ञानोपदेश ही 'दक्षिणा' है। प्राणायाम ही श्रेष्ठ 'बल' है।

धर्म इष्टं धनं नृणां यज्ञोऽहं भगवत्तम:।

दक्षिणा ज्ञानसन्देशः प्राणायामः परं बलम्।।39।।

अ. 19 स्कं. 11

मेरा ऐश्वर्य ही 'भग' है। श्रेष्ठ भक्ति ही उत्तम 'लाभ' है। वह बोध जिससे ब्रह्म और आत्मा का भेद मिट जाये वही 'विद्या' है। पाप से घृणा 'लज्जा' है। निरपेक्षता आदि गुण ही शरीर का 'श्री' है। दुःख, सुख दोनों की भावना का सदा के लिये नष्ट होना 'सुख' है। विषय भोगों की कामना ही 'दुःख' है। जो बन्धन और मोक्ष को तत्त्वतः जानता है, वह 'पण्डित' है। देहादि में मैपन जिसमें है, वह 'मूर्ख' है। 'सुमार्ग' वह है जिससे मेरी प्राप्ति होती है। चित्त की बर्हिमुखता ही 'कुमार्ग' है। सत्त्व की वृद्धि ही 'स्वर्ग' तथा तमोगुण की वृद्धि 'नरक' है। 'गुरु' ही सच्चा भाई–बन्धु और वह गुरु मैं हूँ। मनुष्य शरीर ही 'घर' है। जो सद्‌गुणों का खजाना है वही 'धनी' है।

असंतोष से भरा चित्त वाला 'दरिद्र' है। अतिनेन्द्रिय 'कृपण' है। जिसकी चित्तवृत्ति विषयों में आसक्त नहीं है, 'ईश्वर' वही है। विषयासक्त 'असमर्थ' है।

उद्धव! तुम्हारे पूछे गये प्रश्नों का उत्तर लक्षणसहित बताया, इनकी समझ मोक्ष मार्ग के लिये सहायक है।

अब बीसवें अध्याय में पुनः ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग के बारे में उद्धव जी ने विशेष प्रश्न किया है जिसका समाधान भगवान श्रीकृष्ण ने किया है। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—प्रिय उद्धव! मैंने ही वेदों में एवं अन्यत्र भी मनुष्यों का कल्याण करने के लिये अधिकारि भेद से तीन प्रकार के योगों का उपदेश किया है। वे हैं—ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग। मनुष्य के परम कल्याण के लिये इनके अतिरिक्त और कोई उपाय कहीं नहीं है।

योगस्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोन्योस्ति कुन्नचित्।। 6, 20, 11 ।।

जो लोग कर्मों तथा उनके फलों से विरक्त हो गये हैं, वे ज्ञानयोग के अधिकारी हैं। इसके विपरीत जिनके चित्त में कर्मों तथा उनके फलों से वैराग्य नहीं हुआ है, वे सकाम व्यक्ति कर्मयोग के अधिकारी है। जो पुरुष न तो अत्यन्त विरक्त है और न आसक्त परन्तु पूर्वजन्म के शुभकर्म से उसे मेरी लीला–कथा आदि में श्रद्धा हो गयी है, वह भक्ति योग का अधिकारी है।

निर्विण्णानां ज्ञायोगो न्यासिनामिह कर्मसु।
तेष्वनिर्विण्सणणचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम्।।7, 20, 11।।
यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान्।
न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगस्यि सिद्धिदः।।8, 20, 11।।

उद्धव! अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में रहकर अपने इन्द्रियों और प्राणों को वश में रखें और मन को एक क्षण के लिये स्वतन्त्र न छोड़ें। सत्व सम्पन्न बुद्धि के द्वारा धीरे–धीरे मन को वश में कर लेना चाहिए। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि (अष्टांग योग) आदि योग मार्गों से वास्तविक तत्त्व आत्मविद्या को प्राप्त करके तथा मेरी उपासना से–कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग से मन परमात्मा में तन्मय हो जाता है, और कोई उपाय नहीं है।

यथादिभिर्योगपथैरान्वीक्षिक्या च विद्यया।
ममार्चोपासनाभिर्वा नान्यैर्योग्यं स्मेरन्मनः।। 24, 20, 11 ।।

यद्यपि तो योगी कभी निन्दित कर्म करता नहीं, यदि कभी प्रमादवश कोई अपराध बन जाये तो योग के द्वारा ही उस पाप को जला डाले।

यदि कुर्यात् प्रमादेन योगी कर्म विगर्हितम।
योगेनैव दहेंदहो नान्यत्तत्र कदाचन।।25, 20, 11।।

उद्धव जी! इस प्रकार मेरे बतलाये हुये भक्तियोग द्वारा निरन्तर मेरा स्मरण करने से, मैं उसके हृदय में आकर बैठ जाता हूँ, जिससे उसकी सारी वासनायें अपने संस्कारों के साथ नष्ट हो जाती हैं। मुझ सर्वात्मा के साक्षात्कार होने से उसके हृदय की गाँठ टूट जाती है, उसके सारे संशय नष्ट हो जाते हैं।

प्रोक्तेन भक्तियोगेन भजतो मासकृन्मुने।
कामा हृदय्या नश्यन्ति सर्वे मयि हृदि स्थिते।। 29, 20, 22 ।।
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि मयि दृष्टेऽखिलात्मनि।। 30, 20, 11 ।।

यह मनुष्य शरीर समस्त शुभ फलों की प्राप्ति का मूल है। यह अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी अनायास सुलभ हो गया है। संसार सागर से पार होने के लिये यह एक सुदृढ़ नौका है। गुरुदेव के शरण ग्रहण मात्र से लेकर बनकर इस नौका का संचालन करने लगते हैं और मैं अनुकूल वायु के रूप में इस नौका को लक्ष्य की ओर बढ़ाने लगता हूँ। इतने पर भी यदि कोई संसार सागर पार नहीं होता तो वह आत्महत्यारा है।

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
पल्वं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नमस्वतेरितं
पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा।। 17।। अ. 20 स्कं. ।।

"ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः"

गुरुदेवजी पोलिंग ऑफिसर बने

जगदीश राए बंसल "अधम" 9212434003 एवं 011–35699425

अखिल ब्रह्माण्ड नामक, त्रय जग पावन, अखण्ड ज्योति, योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं हृदय सम्राट, सिद्ध योगाधिपति सद्गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने लाड़ले बच्चों पर हर समय, हर स्थान पर, हर अशरण–शरण की आपत्ति के समय अपनी कृपा के बादल बरसाते रहे हैं। भले ही आपत्ति के समय कोई भाई गुरू देव भगवान को याद करे अथवा चूक जाए, परन्तु अत्र–तत्र सर्वत्र विद्यमान अन्तर्यामी जी ये कृपाऐं चाहे अग्निकाण्ड की लपटों से बचाने की हों, या गहरे जल स्रोत धारा से डूबने से बचाने की हों या सरपट दौड़ती रेलगाड़ी के पहिए से बचाने की हों या किसी उग्रवाद के चंगुल से बचाने की हों या किसी अनिष्ठकारी तान्त्रिक के प्रकोप से बचाने की हों अथवा मृत्यु से जूझ रहे बीमार की रक्षा आदि की हों.....। जन कल्याणार्थ यूं चुटकी में समाधान करते रहे हैं। परन्तु सर्व समर्थ गुरुदेव जी के इस मर्म को कोई श्रेष्ठतम साधक भी आज तक नहीं जान पाया कि किस प्रकार प्रत्युपारी गुरुदेव भगवान किसी को श्री सिद्ध गुफा की रज देकर, किसी को शक्ति संचारित पुष्प पत्तियाँ प्रसाद देकर किसी को स्पृष्य अथवा दृश्य मात्र से निहाल करते रहे हैं। इतना ही नहीं अपितु रिद्धि–सिद्धि के स्वामी तरह–तरह के रूप एवं वेश–भूषा बना कर मौके पर पहुँचते रहे हैं। कहीं न्यायाधीश बनकर, कहीं सर्जन बनकर, कहीं बाबाजी अथवा मौलवी जी बनकर, कहीं दरोगा जी बनकर, किसी को अनुभूति या प्रेरणा देकर अथवा यथारूप धारण कर संकट का समाधान करते रहे हैं।

प्रस्तुत लेख में एक इसी प्रकार का कृपा प्रसंग है, जो अपने श्री सिद्ध गुफा संवाई धाम से पूर्ण निष्ठा रखने वाले अपने आराध्यदेव जी के विशेष कृपा पात्र और हमारे आदरणीय गुरुभाई 76 वर्षीय टूण्डला निवासी श्री चरण सिंह चौहान से सम्बन्धित है। योग योगेश्वर गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की चरण–शरण में समर्पित सवांई धाम पधारे इन मृदुभाषी गुरूभाई जी ने यह प्रसंग इस प्रकार परिलक्षित किया कि–

मुझे सन् 1975 में श्री सिद्ध योगाधिपति गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से कोटिशः सिद्ध सेवित योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा योगाधाम संवाई मे दीक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दीक्षोपरान्त आराध्यदेव जी ने मुझे नियमित आरती–पूजा, मन्त्र, जाप

एवं ध्यान करने का भाग्यादेश दिया था, अतः नियमानुवर्तिता के कारण मेरे भाग्य का इन्द्र धनुष स्वमेव चमक उठा और त्रिकालज्ञ लखदातार की विशेष अनुकम्पा से आरती पूजा आध्यात्मिक नैतिक कार्यकर्मों के साथ-साथ मुझ में तीव्र श्रद्धा का अंकुर फूटने लगा। मैं सन् 2012 में सिकोहाबाद से प्रिन्सीपल के पद से सेवा निवृत्त हुआ हूँ। तब से समय भी पर्याप्त है।

हाँ, प्रारम्भ से ही गुरु कृपाओं का तो कोई अन्त नहीं है। 'हरी अनन्त हरीकथा अनन्ता' वाली बात है। मगर गुरु कृपाओं को शब्दों की माला में पिरोना तो असम्भव है ही। फिर भी योग पिपासु को नमन करते हुए अपने आह्लादित मन से एक प्रसंग अवश्य वर्णनीय है। इस कृपा की बात यूं बनी कि सन् 1995 में चुनाव आयोग द्वारा यू.पी.राज्य के अन्तर्गत ऐटा जिला के अलीगंज सीट से लोक सभा का उपचुनाव घोषित किया गया। इस चुनाव में मुझे वहाँ के प्रिजाईडिंग ऑफिसर का कार्य भार सौंपा गया। उपचुनाव से 8-10 दिन पहले हमें पूर्ण रूप से नियमावली, अनुशासन एवं हमारे अधिकार आदि से अवगत (ट्रेनिंग) करा दिया गया। सूर्य नारायण अपनी गति से उदय एवं अस्त होता रहा। अन्ततः वह दिन आ ही गया जिस दिन उपचुनाव की ड्यूटी के लिये अलीगंज की यात्रा करनी थी। मैं ब्रह्म मुहूर्त में ही उठ गया। स्नानादी कर अखण्ड कोटि ब्रह्माण्ड नायक जगत नियन्ता महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं प्रातः स्मरणीय श्री गुरुदेव अनन्त विभूषित योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की मंगला आरती और नैतिक कार्यों से शीघ्र निवृत्त होकर, परिपूरित कर्त्तव्य परायणता के नाते, पुनः सृष्टिकर्ता गुरुदेव भगवान को प्रणाम कर, मानसिक जाप करता हुआ, समय रहते अपने गन्तव्य पर पहुँच गया।

सभी नवागन्तुक अपनी-अपनी ड्यूटी सभालने में रूचि ले रहे थे। इससे पहले कि मैं अपने त्रिलोकी नाथ जी को प्रणाम कर, अपनी सीट अर्थात् प्रिजाईडिंग आफसिर की कुर्सी पर आसीन हो कर कार्य प्रणाली का श्री गणेश करूँ, मुझ से ड्यूटी-पत्र की माँग की गई। अरे, यह क्या ? अपने कोठ की सभी जेबें खंगाल लीं परन्तु ड्यूटी पत्र हाथ ही नहीं लगा, कल ही मैंने कोट की अन्दर वाली पॉकिट में डाला था। मैं किंकर्त्तव्य विमूढ़ावस्था में आ गया। काटो तो खून नहीं! इसी उहा-पोह में मैंने अपने सुपुत्र से सम्पर्क साधा..... वो बोला, हाँ पिताजी, ड्यूटी लैटर तो जो कोट मैं पहन कर अपने कार्यालय आया हूँ, इसकी भीतर वाली जेब में है......। हाय....कालिया, अब तेरा क्या होगा ?

चिंगारी जो लगाए-सागर उसे बुझाए,
जब सागर ही चिंगारी लगाए,

उसे कौन बुझाए ?

''यह मुसीबत तो पहाड़ बनकर खड़ी हो गई ....

किसी भी युक्ति से लैटर यहाँ उपस्थित नहीं हो सकता ..... गहना कर्मणो गति ..... समय तो निकल चुका है ......अब मैं क्या करूँ ? मैं उपस्थित होकर भी अनुपस्थित हो कर रह गया गुरुदेव! वास्तव में ही जीवन विपत्ति की परिभाषा है। भक्त शिरोमणि दादा तुलसीदास महाराज की याद आती है कि--

'सुनहूं भरत भावी प्रबल,
बिलखि कहेऊं मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवन मरण,
जश अपजश विधि हाथ।।''

विवशतावश मेरे पगों में घर की राह पकड़ी, मार्ग में मेरे संशय मन में अनेक संशय उछलने लगे कि मुझे कारण बताओ नोटिस भेजा जाएगा ..... कोर्ट केस चलेगा .... भारी फाइन पड़ेगा ...... छवि धूलित होगी ..... इत्यादि-इत्यादि। यह कैसी विडम्बना है, ''गुरुदेव'' ? ..... आप कहा करते थे ''जहाँ इष्ट होता है, वहाँ अनिष्ट नहीं होता।'' मगर यहाँ तो .... ? नहीं, नहीं, इसमें कोई मेरी भलाई छुपी होगी। इस बात का मुझे पक्का विश्वास है, और विश्वास पहाड़ों को भी हिला सकता है। जैसे चन्द्रमा रसों का मूल स्रोत है, चन्द्रमा से ही अमृत बनता है, वैसे ही हमारे सिद्धगुरु जी में अमृत भरा है और शिष्य को अमर बना देने में गुरु ही सामर्थ्य होता है। गुरुदेव किसी ज्ञात-अज्ञात का अनिष्ट नहीं करते और मुझे तो आराध्यदेव, आशुतोष जी अपने श्री चरण कमलों की रज के एक कण का सौंवा अथवा हजारवाँ अंश तो मानते ही होंगे!

हम चुपके से फरियाद किया करते हैं,
हम हर पल गुरू को याद किया करते हैं।
हम ही नहीं घर में सभी कहा करते हैं,
हम नींद में श्री गुरू का नाम लिया करते हैं।।
समय का चक्र अपनी गति से चलता रहा,
'चिन्ता डायन' से गुरूमन्त्र भी चलता रहा।।

इस प्रकार लगभग एक माह व्यतीत हो गया। देखिए--गुरुदेव चमत्कार करते नहीं, मगर चमत्कार हो जाते हैं। आ गई लहर शिवा के मन में--अचानक मुझे आठ सौ रुपये की राशि मेरे द्वारा प्रिजाईडिंग ऑफिसर की ड्यूटी करने के पारिश्रमिक रूप से प्राप्त हुए।

बोलिए–

गुरूदेव जयजय–सद्‌गुरू जय जय।

अखण्ड ज्योति प्रभु–रामलाल जय जय।।

न जाने किस गुण पर दयालु रीझ जाते हैं। कालचक्र युग चक्र और जग चक्र को चलाने वाले गुरुदेव भगवान की ऐसी मिसाल अन्यत्र मिलना कठिन है। मैं सीधा अपने गुरु दरबार में जाकर दण्डवत गिर पड़ा। पाँचों इन्द्रियों से बदरिया बरस पड़ी। गुरूदेव आपने इस तुच्छ के लिए इतना कष्ट वहन किया .... मुख से शब्द नहीं निकल रहे थे.....।

अपने आदरणीय गुरु भाई श्री अन्तुराम शायद मुझे ही सुना रहे हैं कि–

''सद्‌गुरु केवल संसार से तिरोहित हो जाते हैं, मरते नहीं। जब तक वे सशरीर इस धराधाम पर विद्यमान रहते हैं, तब तक ''एक देशीय'' होते हैं। परन्तु जब वे शरीर छोड़ देते हैं तब ''बहुदेशीय'' हो जाते हैं। अर्थात् सूक्ष्म रूप से वे अत्र–तत्र सर्वत्र विद्यमान रहते हैं। वे सूक्ष्म रूप से अपने हर बच्चे के साथ सदैव रहते हैं। उसकी पल–पल गतिविधियों पर नजर रखते हैं। इत्यादि।''

योगेश्वर जी तुम्हें बार–बार प्रणाम

तू ही चन्दा, तू ही तारा, सूरज का प्रकाश तू ही।

तू ही शंकर, तू ही भोला–काशी और कैलाश तू ही।।

हरिद्वार और ऋषिकेश तू ही–गंगा जी का धाम

योगेश्वर जी तुम्हें.....।

रस, रूप और गन्ध तू ही–तीनों गुणों का सार तू ही

बल बुद्धि और तेज तू ही–कामधेनु और कुबेर तू ही,

श्रद्धाभक्ति–तप बल तुम हो–हे निर्बल के बलराम

योगेश्वर जी तुम्हें बार–बार प्रणाम।।

''ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः''

गुरु चरणों की रज से भवसागर पार

श्री गुरुदेव भगवान का एक अकिंचन बालक—अन्तू राम यादव, प्रयागराज
फोन—9936678368, 7376691758

प्रातः स्मरणीय योग योगेश्वर आनन्दकन्द अनन्त श्री दादा गुरुदेव एवं श्री सद्गुरु देव भगवान के पावन कमलवत् चरणों में कोटिशः नमन एवं सभी आदरणीय भाई–बहनों को सादर जय गुरुदेव। उपरोक्त शीर्षक से संबंधित सन्तों की वाणी एवं ग्रन्थों के आधार पर कुछ पंक्तियाँ आपके सम्मुख प्रस्तुत हैं। गुरु भक्तों के हृदय में अपने गुरुदेव के प्रति और श्रद्धा बढ़े, इस लेख का यही मुख्य उद्देश्य है। सर्वप्रथम श्रद्धा के बारे में तनिक विचार कर लें।

सन्तों ने दो चीजें अत्यन्त दुर्लभ बताया है। पहला मानव जन्म और दूसरा गुरुदेव के प्रति श्रद्धा–प्रेम। हम सब अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं कि हमें ये दोनों प्राप्त हैं। मनुष्य में गुरुदेव को ढूँढ लेना और गुरु में परमात्मा को पहचान लेना, यह शिष्य के हृदय की अद्भुत श्रद्धा का ही चमत्कार है। श्रद्धा बड़े दुस्साहस की बात है। कमजोर के बस की बात नहीं, बलवान की बात है। श्रद्धा ऐसी दीवानगी है कि जब चारों तरफ मरुस्थल हो और कहीं हरियाली का नामोनिशान न हो, तब भी श्रद्धा भरोसा करती है कि हरियाली है, फूल खिलते हैं। जब जल का कहीं कण भी दिखाई न देता हो, तब भी श्रद्धा मानती है कि जल के झरने हैं, प्यास तृप्त होती है। जब चारों ओर पतझड़ हो तब भी श्रद्धा में बसन्त ही होता है। जो सच्चे शिष्य हैं, उनका अनुभव यही कहता है कि श्रद्धा में सदैव बसन्त ही रहता है। श्रद्धा, एक ही मौसम जानती है, वह है—बसन्त! बाहर होता रहे पतझड़, पतझड़ के सारे प्रमाण मिलते रहें, लेकिन श्रद्धा बसन्त को ही मानती है। इस बसन्त में भक्ति के गीत गूँजते हैं। समर्पण का सुरीला संगीत महकता है। श्रद्धा जिसके आदर्शों में हाती है, वही गुरु–कृपा का पात्र होता है। श्रद्धा शिष्यों को गुरु कार्यों के प्रति नित्य हर पल बढ़ना सिखाती है, गुरुदेव के निमित्त ही जीना सिखाती है, गुरु के ही चरित्र पर सतत् चिन्तन करने की प्रेरणा देती है। श्रद्धा ही वह अद्भुत

शक्ति है जो गुरु जैसा बनने के सद्विचारों की गंगोत्री शिष्य के हृदय में निरन्तर प्रवाहित करती है।

अनुभवी साधकों का कहना है कि गुरुदेव के प्रति अटूट श्रद्धा से ही शिष्य को निश्चित रूप से गुरुदेव का दिव्य सन्देश मिलता है। स्वप्न में, ध्यान में या फिर साक्षात् उसे सद्गुरु की कृपा की अनुभूति होती है। शिष्य की श्रद्धा, अनुराग व प्रगाढ़ भक्ति से प्रसन्न होकर गुरुदेव शिष्य की लौकिक एवं आध्यात्मिक सभी इच्छाओं को पूरा करते हैं। यह कथन केवल काल्पनिक विचार नहीं हैं; बल्कि अनेक साधकों की साधनानुभूति है। श्रद्धा से ही शिष्य के हृदय में सद्गुरु के प्रति समर्पण के स्वर फूटते हैं। श्रद्धा से ही शिष्य के मन–प्राण में गुरुवर के लिए सर्वस्वान्योछावर करने की उमंग जगती है। श्रद्धा से ही शिष्य की अन्तर्चेतना में सद्गुरु की चेतना झलकने और छलकने लगती है। श्रद्धावान शिष्यों के लिए बस एक ही मंत्र है–अपने गुरुदेव का नाम, उनका एक ही कर्म है–अपने गुरुदेव की सेवा, उनमें सदा एक ही भाव विद्यमान रहता है, गुरुदेव के प्रति समर्पण भाव। श्रद्धावान शिष्य अपनी जिन्दगी के सारे रिश्ते–नाते, सभी संबंध अपने गुरुदेव में ही मानता है, श्रद्धावान शिष्य के लिए गुरुदेव के सिवा त्रिभुवन में न कोई सत्य है और न ही कोई तथ्य। यह है श्रद्धा का प्रभाव।

एक गुरुभक्त को भलीभाँति यह समझ लेना चाहिए कि अपने गुरुदेव के स्वरूप का थोड़ा सा चिन्तन भी शिव–चिन्तन के समान है। उनके नाम का थोड़ा सा कीर्तन भी शिव कीर्तन के बराबर है। सद्गुरु का स्मरण और उनके प्रति समर्पण ही शिष्य के जीवन का सार है। इस सरल किन्तु समर्थ साधना से शिष्यों को सब कुछ अनायास ही प्राप्त हो जाता है। इतना ही नहीं शिष्य में भवसागर से पार होने की सामर्थ्य भी आ जाती है। यह केवल कोरी कल्पना नहीं बल्कि प्रत्येक समय में अनेक शिष्यों ने श्रद्धा के बल पर गुरु कृपा को अपने अस्तित्व में फलित होते देखा है। ऐसे ही एक गुरु भक्त के जीवन में घटी सच्ची घटना का उल्लेख किया जा रहा है–

काशी निवासी सन्तों में, अपने समय के सिद्ध सन्त स्वामी भास्करानन्द का नाम बड़े आदर और श्रद्धा के साथ लिया जाता है। देश–विदेश के बड़े–बड़े राजा–महाराजा उनके भक्तों में थे। भारत के तत्कालीन अंग्रेज सेनापति जनरल लूकार्ट उन्हें अपना गुरु मानता था। इन सब विशिष्ट महानुभावों के बीच लक्ष्मण मल्लाह भी स्वामी भास्करानन्द का एक शिष्य था। लक्ष्मण मल्लाह न तो पढ़ा लिखा था और न ही उसमें कोई विशेष योग्यता थी; लेकिन उसका हृदय सदा ही अपने गुरुदेव के प्रत विरल रहता था। भारत के प्रायः सभी

राजा–महाराजा स्वामी जी की चरण धूलि लेने में अपना सौभाग्य मानते थे। स्वामी जी के योग ऐश्वर्य से सभी समत्कृत थे। प्राय: सभी को स्वामी जी अनेक संकट आपदाओं से उबारते रहते थे, लेकिन लक्ष्मण मल्लाह के लिए तो अपनी गुरु भक्ति ही पर्याप्त थी। गुरु चरणों की सेवा, गुरु का नाम जप, यही उसके लिए सब कुछ था।

श्रद्धा से विभोर होकर लक्ष्मण मल्लाह स्वामी भास्करानन्द (अपने गुरुदेव) की चरण धूलि इकट्ठा करके एक डिबिया में रख लिया था स्वामीजी की खड़ाऊ उसकी पूजा बेदी में रखे रहते थे। इन्हीं की पूजा करना: गुरु चरणों का ध्यान करना और गुरु–चरणों की रज अपने माथे पर लगाना उसका नित्य नियम था। इसके अलावा उसे और सिकी योग विधि का पता नहीं था। कठिन आसन, प्राणायाम की प्रक्रियाएँ उसे नहीं मालूम थीं। किसी मंत्र का उसे कोई ज्ञान न था। अपने गुरुदेव का नाम ही उसके लिए महामंत्र था। इसी का वह जप करता था: यदा–कदा इसी नाम धुन का वह कीर्तन करने लगता था।

एक दिन प्रात: जब वह रोज की तरह गुरुदेव की चरण–रज अपने माथे पर धारण करके गुरुदेव का नाम जप करता हुआ उनके चरणों का चिन्तन कर रहा था: इसी बीच एक आश्चर्यजनक घटना घटित हुई। उसने अनुभव किया कि दोनों भौहों के बीच एक गोलाकार सफेद प्रकाश बहुत ही सघन हो गया है। यूँ तो यह प्रकाश पहले भी कभी–कभी झलकता था, पर आज उसकी सघनता कुछ ज्यादा थी। लक्ष्मण मल्लाह को आश्चर्य और भी ज्यादा तो तब हुआ, जब उसने देखा कि गोलाकार सफेद प्रकाश में एक हल्का सा विस्फोट सा हो गया और उसमें सफेद कमल की दो पंखुड़ियाँ खुल रही हैं। गुरु नाम के धुन के साथ ही ये दोनों सफेद पंखुड़ियाँ खुल गईं और उसके अन्दर से सफेद प्रकाश की सघन रेखाएँ उभरने लगीं।

इस अद्‌भुत घटना के बाद लक्ष्मण मल्लाह को अनायास ही अपने आश्रम में स्वामी भास्करानन्द ध्यानस्थ बैठे हुए दिखाई दिये। योग विद्या से अनभिज्ञ लक्ष्मण मल्लाह को यह सब अचरज भरा लगा। दिन में जब वह अपने गुरुदेव को प्रणाम करने गया तो उसने सुबह की सारी कथा कह सुनाई। लक्ष्मण मल्लाह की सारी कथा सुनकर स्वामी जी मुस्कुराये और बोले–बेटा! इसे आज्ञा चक्र का जागरण कहते हैं। अब से तुम जब भी भौहों के बीच में मन को एकाग्र करके जिस किसी स्थान, वस्तु या व्यक्ति का संकल्प करोगे, वही तुम्हें दिखने लगेगा।

स्वामी जी के इस कथन के उत्तर में लक्ष्मण मल्लाह ने कहा–हे गुरुदेव! मैं तो सदा–सदा आप को ही देखते रहना चाहता हूँ। मुझे तो इतना ही मालूम है कि मैं आपके

चरणों की धूलि को अपनी भौंहों के बीच में लगाया करता था। यह जो कुछ भी हुआ, आप की चरण धूलि का ही चमत्कार है। अब तो यह नई बात जान कर मुझे पूरा-पूरा विश्वास हो गया है कि गुरु चरणों की रज से शिष्य आसानी से भवसागर पार कर सकता है। लक्ष्मण मल्लाह की यह अनुभूति हम सब गुरु भक्तों की भी अनुभूति बन सकती है। लक्ष्मण मल्लाह की अनन्य गुरु भक्ति हम सब गुरुभक्तों के लिए अनुकरणीय है। बस शर्त केवल यही है कि हम सबके हृदय में भी लक्ष्मण मल्लाह जैसा ही गुरुदेव के प्रति सघन प्रेम एवं उत्कट गुरु भक्ति होनी चाहिए। असम्भव को सम्भव करने वाली गुरु-भक्ति की महिमा अपरम्पार है।

लेख में हुई त्रुटियों के लिए क्षमा याचना करते हुए निम्नांकित पंक्तियों के साथ मैं अपनी लेखनी को विराम देता हूँ।

''गुरुदेव दया करके, मुझको अपना लेना।
मैं शरण पड़ा तेरी, चरणों में जगह देना।।''

सादर जयगुरुदेव।

यमान सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः।
यमान् पतत्यकुर्वाणो केवलान् भजन्।।

बुद्धिमान् को चाहिए कि यमों का लगातार सेवन करे, नियमों का ही नहीं, क्योंकि केवल नियमों का सेवन करने वाला यमों का पालन न करता हुआ गिर जाता है।

—मनु.

"ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः"

नाम कीर्तन महिमा

प्रेषक–कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

पद्मपुराण मे सूतजी का ऋषियों तथा विभिन्न पवित्र पूतात्मा नृपों का संवाद अत्यन्त हृदयग्राही है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे पाठक स्वयं वहाँ बैठकर आनन्द ले रहा है। यह सब सद्गुरु की कृपा से ही संभव हो सकता है। सद्गुरु वह औषधि है जिसके उपदेश को सुनकर स्वाभाविक सद्क्रियाएँ होती हैं। इसका आभास तक नहीं होता है। साधक इस बात को महसूस करता है। भौतिक जगत भी खूब परिपुष्ट होकर फलता–फूलता है। तो आध्यात्म की कौन कहे। तात्पर्य यह है कि सद्गुरु की कृपा से साधक का भौतिक और आध्यात्मिक दोनों तरह से उन्नति होती है। यह साधक पर निर्भर है कि उसने कितना कर्मयोग किया।

ऋषियों का सत्संग चल रहा था। जिसमें सब लोगों ने पूछा–सूत जी कोई ऐसा एक कर्म बताइये, जिसमें सबका फल समाहित हो। सूत जी ने जो उत्तर दिया। उसको साधक के लिए प्रेरक समझकर श्लोक के साथ लिपिबद्ध करने का प्रयास है। सद्गुरु भगवान सदैव इसी प्रकार उपदेश देते रहे। सूत जी ने सत्सग के क्रम को आगे बढ़ाते कहा–

हरिभक्तिः कृता येन मनसा कर्मणा गिराः।
जितंतेन जितं तेन जितमेव न संशयः।।

अर्थात् जिस साधक ने मन वाणी और कर्म से भगवान की भक्ति की उसने विजय प्राप्त कर ली। इसमें जरा भी संशय नहीं है। वस्तुतः हरिनाम रूपी महामंत्रों के द्वारा पापरूपी पिशाचों का समुदाय नष्ट हो जाता है। सद्गुरुदेव योगीराज भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज स्वयं कहते थे। गुरु प्रदत्त मंत्रों का खूब जप करो। इससे तीन तरह से आशीर्वाद प्राप्त होता है। प्रथम जिस ईष्ट के नाम का जप करते उनका, दूसरा सद्गुरुदेव जिन्होंने मंत्र दिया, तीसरा जिसने इस मन्त्र को सिद्ध कर लिया है। उसकी कृपा प्राप्त होती है। आगे–

प्रतिमां च हरेर्दृष्ट्वा सर्वतीर्थ फलं लभेत्।
विष्णु नाम परं जप्त्वा सर्वमन्त्रफलं लभेत्।।

जीव श्री हरि की प्रतिमा का दर्शन करके सब तीर्थों का फल प्राप्त करता है। उनके उत्तम नाम का जप करके सम्पूर्ण मंत्रों के मल को प्राप्त कर लेता है। यथार्थ बात है। जब मंत्र सिद्ध हो जाता है। तो शक समाप्त होकर सदैव स्वरूप दर्शन होता रहता है। ऐसा

साधकों का अनुभव सुनने को मिला है। अब साधक को सदैव प्रभु के ही दर्शन होते हैं। इससे पाप होने की संभावना नहीं रह जाती है।

विष्णु प्रसाद तुलसीमाघाय द्विजसत्तमाः।
प्रचण्डं विकरालं तद् यमस्यास्यं न पश्यति।।

अर्थात् भगवान विष्णु के प्रसाद स्वरूप तुलसी दल को सूंघकर मनुष्य यमराज के प्रचण्ड एवं विकराल मुख का दर्शन नहीं करता है।

सकृत्प्रणामी कृष्णस्य मातुः स्तन्यंपिवेत्र हि।
हरिपादे मनो येषां तेभ्यो नित्यं नमो नमः।।

मनुष्य एक बार श्रीकृष्ण को प्रणाम करके पुनः माता के स्तनों का दूध नहीं पीता अर्थात् उसका दूसरा जन्म नहीं होता है। जिन पुरुषों का चित्त श्री हरि के चरणों में लगा है। उन्हें मेरा प्रतिदिन प्रणाम है। अर्थात् भगवान की भक्ति करने वाले को गर्भवास का दुःख नहीं देखना पड़ता है।

हरेरग्रे स्वनैरुच्चैर्नृत्यंस्तन्नाम कृन्नरः।
पुनाति भुवनं विप्रा गंगादि सलिलं यथा।।

भगवान के सम्मुख उच्च स्वर से उनके नामों का कीर्तन करते हुए नृत्य करने वाला मनुष्य गंगा आदि नदियों के जल की भाँति समस्त संसार को पवित्र कर देता है। इस तरह सबके साथ क्यों नहीं होता है। यह गूढ़ रहस्य है। प्रभु में आस्था, श्रद्धा रखने वाले से संभव है। जो सदैव सम दर्शन की प्रवृत्ति वाला हो।

हरिभक्ति कथामुक्ताख्यायिकां श्रृणुयाच्च यः।
तस्य संदर्शनादेव पूतो भवति मानवः।।

जो मनुष्य हरिभक्ति रूपी कथा जो जीवन के लिए मुक्तामयी आख्यायिका का श्रवण करता है उसके दर्शन मात्र से मनुष्य पवित्र हो जाता है। कीर्तन को यह शक्ति मध्यकाल के संतों में खूब पढ़ने को मिलता है। गौरांग महाप्रभु, नरसी मेहता, रामकृष्ण परमहंस, सूर मीरा की गणना ऐसे ही भक्त संतों में है। सिद्ध गुफा सवाई के साधक भी खूब आनन्द प्राप्त किये हैं। साधक साथियों आनन्द का रव जब हृदय में प्रवेश करता है तो बस दो ही होते हैं—परमात्मा और साधक फिर तो एकाकार होकर एक हो जाते हैं।

तीर्थांकुर्वन्ति जगती गृहीतं कृष्णनाम यैः।
तस्मान्मुनिवराः पुण्यं नातः परतरं विदुः।।

अर्थात् जिन्होंने श्री कृष्ण नाम को अपनाया है। वे पृथ्वी को तीर्थ बना देते हैं। इसलिए

श्रेष्ठ मुनिजन इससे बढ़कर पावन वस्तु और कुछ नहीं मानते है। वस्तुतः भगवन्नाम और गुरु कृपा यमराज के चंगुल से व्यक्ति मुक्त हो जाता है। साधक साथियों सद्गुरुदेव भगवान योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने आश्रम पर रहते हुए सत्संग के क्रम में दो बात जो आज भी हमें ऊर्जा प्रदान करती हैं। सायंकाल गुरुभाई बैठकर गुफा के सामने अपनी जिज्ञासा प्रकट कर रहे थे। उसने एक साधिका बहन ने पूछा—गुरुदेव यदि कदाचित् भ्रष्ट होकर डूबने लगे तो क्या होगा। गुरुदेव ने हाथ का संकेत करके हम उसे ऐसे खींचकर निकाल देंगे। दूसरा सत्संग के ही क्रम में कहा—हम अपने बच्चों के लिए अलग लोक बना देंगे। धन्य हो सतगुरु आप की कृपा को कहा नहीं जा सकता है। प्रभु हम अपात्रों को पात्र बना दिया। शेष हमारे कर्मसंस्कार—

ये हीमं विष्णुम व्यक्तं देवं वापि महेश्वरम्।।

एकी भावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भवः।।

जो अव्यक्त विष्णु तथा महेश्वर को एक भाव से देखते हैं। उनका पुनः इस संसार में जन्म नहीं होता है। इसलिए दोनों में कभी भी भेद से नहीं देखना ही सच्ची भगवद् भक्ति है।

मूर्ख वा पण्डितं वापि ब्राह्मणं केशव प्रियम्।

श्वपाक वा मोचयति नारायण स्वयं प्रभुः।।

पण्डित हो या मूर्ख ब्राह्मण हो या चाण्डाल आदि यह भगवान का प्यारा भक्त है। तो स्वयं भगवान नारायण उसे संकटों से छुड़ाते हैं। साधक साथियों मन से और एकाग्रचित्त से किया गया कार्य चाहे वह भौतिक हो या आध्यात्मिक सबमें सफलता प्राप्त होता है। सत्संग का क्रम बढ़ता है। ऋषियों की जिज्ञासा और उत्साह स्वाभाविक रूप से बढ़ता है। तो सूत जी उन्हें भगवान के नाम की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

स्वयं नारायणों देवः स्वनाम्नि जगतां गुरुः।

आत्मनोऽभ्यधिकां शक्ति स्थापया मासंसुव्रताः।।

हे ऋषियों—उत्तम व्रत का पालन करने वाले महर्षियों जगद्गुरु भगवान नारायण ने स्वयं ही अपने नाम में अपने से भी अधिक शक्ति स्थापित कर दी है। तुलसी दास जी ने कहा है कि—

नाम प्रसाद संभु अविनाशी।

साजु अमंगल मंगल राशि।।

पुन कहा—अत्र ये विवदन्ते वा आयास लधु दर्शनम्।

फलनां गौरवाच्चापि ते यान्ति नरकं बहु।।

अर्थात् नाम कीर्तन में थोड़ा परिश्रम अवश्य है। किन्तु फल बहुत अधिक प्राप्त होता है। यह देखकर जो लोग इसकी महिमा के विषय में तर्क उपस्थित करते हैं। वे अनेकों बार नरक में पड़ते हैं। पुन: कहा है—पुजारी को मत देखो। किन्तु नाम कीर्तन करने वाले को छाती से लगाये रखो। अत: हम साधकों को गुरु मंत्र का जप और कीर्तन करना ही चाहिए।

हरिनाम महाबजं पापपर्वतदारणम्।
तस्य पादौ तु सफलौ तदर्थगतिशालिनी।।

हरिनाम रूपी महान ब्रज पापों के पहाड़ को विदीर्ण करने वाला है। जो भगवान की ओर आगे बढ़ते हों ऐसे मनुष्य के पैर ही सफल हैं। इसलिए अपने मस्तक को सदैव भगवान के सम्मुख झुकाना चाहिए। वही अंग सफल होते हैं। जीभ भी वही सार्थक है जो भगवान के स्मरण में लगी रहती है। मन भी वही अच्छा है जो उनके चरणों का अनुगमन चिन्तन करता है। रोएं वही सार्थक हैं जो भगवान के कीर्तन में खड़े हो जाते हैं। आँसू भी वही उत्तम है जो परमात्मा के चर्चा के अवसर पर स्वाभाविक निकलते हैं। भक्तों ने ऐसे ही भजन गाये हैं। जिसमें सभी अंग हाथ, पैर, आँख, कान, मुँह, श्वास सदैव मात्र ईश्वर के निमित्त कार्य करते हैं।

पुनश्च—तस्माद्यत्नेन वै विष्णुं कर्मयोगेन मानव:।
कर्मयोगार्चितो विष्णु: प्रसीदत्येव नान्यथा।।
तीर्थादप्यधिकं तीर्थं विष्णोर्भजनमुच्यते

अर्थात् मनुष्य कर्मयोग के द्वारा भगवान विष्णु की यत्नपूर्वक आराधना करें। कर्मयोग से पूजित होने पर ही भगवान प्रसन्न होते हैं, अन्यथा नहीं। भगवान का भजन तीर्थों का से भी अधिक पावन तीर्थ कहा गया है।

यजन्ते कर्म योगेन धन्या सब नरा हरिम्।
तस्माद्यजध्वं मुनय: कृष्ण परममंगलम्।।

भाग्यवान मनुष्य ही कर्मयोग के द्वारा श्री हरिका पूजन करते हैं। अत: मुनियों आप लोग परम मंगलमय श्री कृष्ण की आराधना करें। जिससे स्व कल्याण के साथ लोक कल्याण भी होता रहे।

इस प्रकार सूत जी से भगवान रूप और नाम महिमा को सुनकर सम्पूर्ण समुदाय अत्यन्त आनंदित हुआ। सूत जी द्वारा बताये गये मंत्र से भगवान के नाम का संकीर्तन और स्मरण में ही कल्याण निहित है। यही उपदेश सद्गुरु भगवान देते रहे।

विंनु श्रम नारि परम गति लहई।

श्रीमती सरिता भारद्वाज एम. ए., बी–एड.

नारी और पुरुष में ऊपर के आवरण का ही भेद है। शरीर बुद्धि को छोड़कर तात्विक दृष्टि से देखा जाये तो दोनों में एक ही आत्मा है। स्त्री–पुरुष के जन्म और मरण में भी कोई भेद नहीं है। शरीर विज्ञान की दृष्टि से देखा जाये तो पुरुष में स्त्री के तथा स्त्री में पुरुष के चिह्न मौजूद होते हैं। फिर भी सूर्य और चन्द्र की प्रधानता से शरीर भेद होता है। भगवान शिव अर्द्धनारीश्वर कहलाते हैं। बिना स्त्री की सहायता के जीव का कल्याण नहीं होता। प्रत्येक शरीर में स्त्री के रूप में कुण्डलिनी मां का निवास है तथा उसी शरीर में पुरुष रूप में भगवान शिव का भी निवास है। भगवती कुण्डलिनी उमा, पार्वती, दुर्गा, भवानी आदि नाम वाली समुद्र के तट पर जल और पृथ्वी तत्व के संगम पर कन्या–कुमारी में मूलाधार और स्वाधिष्ठान के समीप स्थित है। भगवान सदाशिव सहस्त्रार–चक्र में कैलाश शिखर पर हैं। इन दोनों का जब तक मिलन होता तब तक आनन्द तथा शान्ति एवं जन्म मरण के चक्र से मुक्ति नहीं हो पाती। दोनों के मिलन के लिए ही तपस्या ध्यान एवं समाधि का अभ्यास अपेक्षित है। तात्विक दृष्टि से स्त्री में चन्द्र की प्रधानता है और पुरुष में सूर्य अंश की। अतः स्त्री को भाव प्रधान साधना की आवश्यकता है और पुरुष को कर्म एवं ज्ञान प्रधान साधना की आवश्यकता है।

प्रत्येक स्त्री में पुरुष के गुण होते हैं और प्रत्येक पुरुष में स्त्री के। किन्तु ये गुण गौण रूप में ही होते हैं। कुछ गुण तो स्त्रियों में पुरुषों से अधिक भी बताये जाते हैं। यथा–

स्त्रीणां द्विगुण आहरो,
लज्जा चापि चतुर्गुणाः।
साहसं षड्गुणं चैव,

कामश्चाष्टगुणः स्मृतः।।

—चाणक्य

आचार्य चाणक्य के मतानुसार स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा–भोजन की आवश्यकता दो गुनी, लज्जा चार गुनी, साहस छः गुना और काम आठ गुना होता है जिस तरह रोगी की प्रकृति को जानकर उसे औषधि दी जाती है उसी प्रकार प्रकृति के अनुसार ही साधना का निश्चय किया जाता है। स्त्रियों के लिए कठोर और उग्र साधनायें उचित नहीं हैं। वे ध्यान योग के द्वारा शीघ्र योगिनी बन सकती हैं। प्रकृति ने उनके शरीर को ऐसा बनाया है कि उनकी नाड़ी शुद्धि थोड़े से अभ्यास से ही हो जाती है। उनके शरीर में रक्त परिभ्रमण की क्रिया तेज होने के कारण स्त्रियों में भावात्मक अस्थिरता तथा उद्वेग अधिक होता है। वे अधिक समय तक किसी एक विषय पर एकाग्र नहीं हो सकती। किन्तु भाव योग के अभ्यास द्वारा वे दूसरे के चित्त में अपना चित्त मिला दे, मन में मन मिला दें तो प्रेम योग के द्वारा अधिक देर तक समाहित चित्त हो सकती है। इसी लिये स्त्रियाँ क्षण में हँसती हैं, और क्षण में रोने लगती हैं। स्त्रियों की प्रकृति मृदु होती है किन्तु भाव के वश होकर उन का निश्चय बहुत दृढ़ होता है।

जो स्त्रियाँ विद्या रूपिणी होती हैं वे ही अपने निश्चय में दृढ़ हो पाती हैं। अधिकांश स्त्रियाँ प्रकृति से गुणों के वश में होने के कारण माया रूपी होती हैं उन्हें अपनी काया से ही फुर्सत नहीं मिलती। अत्यधिक देह बुद्धि होने के कारण उनका जन्म–मरण मुश्किल से छूट पाता है। ऐसी स्त्रियों के लिए ही गोस्वामी ने कहा है—

अवगुन मूल सूलप्रद

प्रमदा सब दुःख खानि।

काम क्रोध लोभादि,

प्रबल मोह कै धारि।

तिन्ह मह अति दारुण

दुःखद माया रूपी नारि।।

जो अविक्षा और माया रूपी नारियाँ हैं उनमें 'अवगुन आठ सदा उर रह हीं' की उक्ति चरितार्थ होती है। संसार को मोह में डालने के लिए स्त्री वसन्त ऋतु की तरह है। अविद्या रूपी नारी किसी घर की गृहणी बन जाती है तो कलह प्रिया कटुभाषणी तथा अपनी माया से घर को नरक बना देती है। जलाशय तथा झरने गर्मी की ऋतु

में जैसे सूख जाते हैं वैसे ही कुलटा के घर में आने पर घर के नियम, तप तप पूजापाठ तिरोहित हो जाते हैं। इसीलिए सन्त तुलसी ने नारि को अंधेरी रात की उपमा दी है–

पाप उलूक निकर सुखकारी।
नारि निविड़ रजनी अंधियारी।।

इससे भिन्न जो विद्यारूपी नारियाँ वे सरस्वती, दुर्गा, लक्ष्मी, सरूपा होती हैं। उनकी आकृति दैवी होती है। वाणा में कर्कशता नहीं अपितु माधुर्य होता है। उनका जीवन सरल और भोजन सात्विक भावों का उदय होता रहता है।

गुरु पितु मातु बन्धु पतिदेवा।
सब मोहि कहँ जाने दृढ़ सेवा।।

घर के सब प्राणियों की सेवा आदरभाव से मन लगाकर यह ध्यान कर करती हैं कि यह ईश्वर की सेवा है। सभी में–ईश्वर बुद्धि रखने से यह सेवा भार नहीं बनती अपितु यही सेवा भजन और भक्ति बन जाती है। विद्या रूपी नारी के दो आभूषण हैं–समर्पण और सेवा। भारतीय नारी अपनी सन्तान, सास–ससुर, पति आदि सब के लिए इतना त्याग और तप करती है कि जिसे देखकर पश्चिमी देश की नारियाँ आश्चर्य चकित हो जाती हैं। जब योरोप की नारियाँ यह सुनती हैं कि भारतीय नारी अपने पति को प्राण से भी अधिक प्रेम करती हैं और सुख–दुःख में जीवन भर साथ देती है तो उन्हें विश्वास नहीं होता। क्योंकि वे शादी के पहले से लेकर अन्त तक सुख की तलाश में इधर से उधर भटकती फिरती है। पूरे जीवन में एक स्त्री न जाने कितने बार तलाक देती है। इसीलिए पाश्चात्य देशों मे भौतिक समृद्धि चरम सीमा पर होने पर भी मनुष्य के जीवन में आनन्द और शान्ति नहीं है। शान्ति की खोज क्लवों, होटलों, और नींद की गोलियों, वीडियो फिल्मों तथा मादक पदार्थों में वहाँ के लोग भटक रहे हैं। बिना सेवा, त्याग, समर्पण तथा सत्यनिष्ठा के शान्ति कैसे मिल सकती है। पतिव्रता नारी अपने पतिदेव को तनमन समर्पित कर उसकी सेवा से घर की स्वामिनी बनकर आनन्द का अनुभव करती है और एक वैश्या इधर–उधर भटक कर धर्म तथा शरीर सब कुछ गवांकर बांझ की बांझ रह जाती है।

भारत में ऐसी सैकड़ों देवियाँ हो गई हैं। जिन्होंने अपने पतिव्रत धर्म के प्रभाव से योग की उच्चस्थिति प्राप्त कर ली थी। अत्रिमहर्षि की सहधर्मिणी अनसूया ने पातिव्रत धर्म के प्रभाव से ब्रह्मा–विष्णु और महेश को छोटा बालक बनाकर गोद खिलाया था।

ऐसी ही सती साध्वी सावित्री ने पतिव्रत धर्म की शक्ति से काल को ललकार दिया। जो यम उसके पति सत्यवान के प्राण लेने आया था वह सावित्री की भक्ति और शक्ति देखकर उसके पति को अमर बना गया।

सती अनसूया ने जगज्जननी सीता को नारी धर्म का उपदेश देने के बहाने पातिव्रत साधना के रहस्य का उद्घाटन किया है–

एकहिं धर्म एक व्रत नेमा।
काय वचन मन पतिपद प्रेमा।।

सती अनसूया ने चार प्रकार की पतिव्रताओं का उल्लेख किया है–उत्तम, मध्यम, अधम और अधमाधम। उत्तम पतिव्रता वह होती है जिनका मन अपने पतिदेव में उसी तरह एक रस रहता है जैसे मछली का मन जल में रहता है। उत्तम पतिव्रता पर पुरुष का स्वप्न में भी चिन्तन नहीं करती। मध्यम पर पुरुषों को भाई, पिता तथा पुत्र दृष्टि से देखती है। जो धर्म तथा कुल की मान–मर्यादा का विचार कर विवशता में मन को रोक पाती हैं वे अधाम कोटि की हैं। जो अवसर और भय से पतिव्रत पालन में तत्पर रहती है वे चतुर्थ प्रकार की हैं। मजबूरी से कोई काम किया जाये तो वह साधना नहीं अपितु श्रम–मात्र होता है जैसे जो शक्ति हीन है वह साधु बन जाये तो वह मजबूरी का साधु है। इसी प्रकार निर्धनता के कारण किसी की शादी न हो फिर वह कहे कि हम ब्रह्मचारी हैं। जिसे अनेकों रोग सताते हों वह यदि देवता की भक्ति करता है तो वह स्वार्थ वश है, असली भक्ति नहीं कही जा सकती। इसी प्रकार वृद्धावस्था में अंग शिथिल होने पर कोई पतिव्रता हो जाये तो उसे वास्तविक नहीं कहा जा सकता।

अशक्तस्तु भवेत्साधुः,
ब्रह्मचारी च निर्धनः।
व्याधिष्ठो देवभक्तश्ज,
वृद्धः नारी पतिव्रता।।

–चाणक्य नीति

जो नारी अपने पति को धोखा देती है वह अपना अगला जन्म बिगाड़ लेती है। छल रहित होकर सच्चे मन से यदि पति की सहूलियत पर सेवा करती है और अपने पति को ध्यान योग की ओर प्रेरित करती है, अपने में तथा घर में उसकी आसक्ति कम करती है वह अपनी मनोलय साधना से पति की कमाई को सरलता से पा जाती

है। इसी तरह जिन पुरुषों की धर्मपत्नियाँ योगध्यान परायण हैं। उनको भी धर्मपत्नी के द्वारा योग स्थिति प्राप्त हो जाती है। पति पत्नी का सम्बन्ध धर्म का जीवन में साक्षात्कार करने के लिए है। जब दोनों में प्रेम होगा, सेवाभाव होगा तो एक को साधना का अवसर आसानी से मिल जायेगा और उसकी शक्ति दूसरे को मन के संकल्प से प्रेम की धारा द्वारा बिना परिश्रम के सहज रूप मिल जायेगी।

सरल विश्वास

सरल विश्वास और निष्कपटता रहने से भगवान का लाभ होता है। एक व्यक्ति की किसी साधु से भेंट हुई। उसने साधु से उपदेश देने के लिए विनयपूर्वक प्रार्थना की। साधु ने कहा, ''भगवान से ही प्रेम करो'' तब उस व्यक्ति ने कहा ''भगवान को न तो मैंने कभी देखा है और न उनके विषय में कुछ जानता ही हूँ, फिर उनसे कैसे प्रेम करूँ?'' साधु ने पूछा ''अच्छा, तुम्हारा किससे प्रेम है?'' उसने कहा, ''इस संसार में मेरा कोई नहीं है, केवल एक मेढ़ा है, उसी को मैं प्यार करता हूँ।'' साधु बोले, ''उस मेढ़े के भीतर ही नारायण विद्यमान हैं, यह जानकर उसी की जी लगाकर सेवा करना और उसी को हृदय से प्रेम करना।'' इतना कहकर साधु चले गये। उस आदमी ने भी, उस मेढ़े में नारायण हैं, यह विश्वास कर तन-मन से उसकी सेवा करना शुरू कर दिया। बहुत दिनों बाद उस रास्ते से लौटते समय साधु ने उस आदमी को खोजकर उससे पूछा, ''क्यों जी अब कैसे हो?'' उस आदमी ने प्रणाम करके कहा गुरुदेव, आपकी कृपा से मैं अब अच्छा हूँ, आपने जो कहा था, उसके अनुसार भावना रखने से मेरा बहुत कल्याण हुआ है। मैं मेढ़े के भीतर कभी-कभी एक अपूर्व मूर्ति देखता हूँ। उनके चार हाथ हैं-उनका दर्शन कर मैं परमानन्द में डूबा हुआ हूँ।''

—रामकृष्णपरमहंस

पाठ से नहीं, पुरुषार्थ से गाड़ी चली

यदि मनुष्य का स्वयं का कुछ किया हुआ न हो तो स्वयं विधाता भी उसकी सहायता नहीं कर सकता, क्योंकि सृष्टि का विधान अटल है। जिस प्रकार विधान बनाने वाले विधायकों को स्वयं उसका पालन करना पड़ता है, वैसे ही ईश्वरीय अवतार और महापुरुष तो क्या स्वयंभगवान भी अपने बनाए विधानों का उल्लंघन नहीं कर सकते। इससे तो उनका सृष्टि संचालन ही अस्त-व्यस्त हो जायेगा। इस संबंध में उन लोगों को सचेत होकर अपना कर्म करना चाहिये जो सोचते हैं कि भगवान सब कर देंगे और स्वयं हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें।

एक आदमी श्री हनुमान का उपासक था। एक बार वह बैलगाड़ी लिए कहीं जा रहा था। गाड़ी कीचड़ में फंस गई, वह वहीं खड़ा होकर हनुमान चालीसा का पाठ करने लगा और गाड़ी बाहर निकालने की कामना करने लगा। तभी उधर से आए एक पण्डित जी ने कहा - मित्र ! हनुमान जी संजीवनी का पता न चलने पर पहाड़ ही उखाड़ लाए थे, तुम कम से कम गाड़ी को हाथ तो लगाओ। आदमी ने थोड़ी ताकत लगाई और बैलगाड़ी बाहर खींच ले गया।

देवता हों या महापुरुष वे तब तक फल नहीं देते, जब तक मनुष्य स्वयं उन आदर्शों के परिपालन के लिए समुद्यत नहीं होता। कर्म विधान पर भी यही सिद्धान्त लागू होता है। ईश्वर उनका फल तब दे जब मनुष्य को बलवान बनाए, याचना भाव नहीं समर्पण भाव बढ़ाये।

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज्ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥

अर्थात् : विनाशशील जड़वर्ग एवं अविनाशी जीवात्मा इन दोनों के संयोग से बने हुए व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप इस विश्व को परमेश्वर ही धारण और पोषण करता है। तथा जीवात्मा इस जगत् के विषयों का भोक्ता बना रहने के कारण प्रकृति के अधीन असमर्थ हो इसमें बँध जाता है। और उस परमदेव परमेश्वर को जानकर सब प्रकार के बंधनों से मुक्त हो जाता है।

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री मन्दमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14666. सम्पादक : आचार्य प्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा